वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656
9 772582 065005

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)
वर्ष ६४ अंक ५ मई २०२६

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४

अंक ५

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

वैशाख, सम्वत् २०८३

मई, २०२६

अनुक्रमणिका

* मनुष्य स्वयं को पहचानने से भगवान को पहचान सकता है : रामकृष्ण परमहंस देव १९८
* सदा विद्यमान मित्र, दार्शनिक और गुरु स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज (स्वामी गौतमानन्द) २०८
* श्रीशंकराचार्य और मातृशक्ति की उपासना (स्वामी ईशानन्द) २०१
* (बच्चों का आंगन) जिज्ञासु बालक (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) २१२
* शंकर पूजिते शारदे (डॉ. अन्वय मुखोपाध्याय) २१४
* भगवान शंकराचार्य चालीसा (पं. गिरिमोहन गुरु 'नगर श्री') २१८
* (युवा प्रांगण) नैतिक या मनोवैज्ञानिक भ्रम (स्वामी गुणदानन्द) २१९
* विवेक-प्रज्ञा के आलोक में महिमान्वित आचार्य शंकर (स्वामी दयापूर्णानन्द) २२५
* आद्यगुरु श्रीशंकराचार्य के स्तोत्र-साहित्य की समीक्षा (सैकत मोहान्त) २२१
* जगद्गुरु रामानुजाचार्य जी की जीवनी एवं शिक्षा (श्रीमती मिताली सिंह) २२९
* मानव-मनोविज्ञान और सुख-प्रेम विवेचन (रामकुमार गौड़) २३६
* (भजन एवं कविता) शंकर और विवेक (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी'), * मंगल मोहक रूप तुम्हारो (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), स्वामी विवेकानन्द तुमको नमन (आनन्द तिवारी 'पौराणिक') २२४,
* विवेकानन्द शंकराचार्य * आये थे तुम हरि भजन को (बाबूलाल परमार) २३३
* त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) २२८

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १९७
सम्पादकीय १९९
रामगीता २०५
पुरखों की थाती २१३
श्रीरामकृष्ण-गीता २१७
गीतातत्त्व-चिन्तन २३०
साधुओं के पावन प्रसंग २३४
समाचार और सूचनाएँ २३८

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	२५०/-	१२५०/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में रजिस्टर्ड पार्सल का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ४५/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर प्रदर्शित चित्र आद्य शंकराचार्य जी का है।

मई माह के जयन्ती और त्यौहार

०१ बुद्ध पूर्णिमा
१३,२७ एकादशी

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक ज्योति
पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । – स्वामी विवेकानन्द

- क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?
- क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए ! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए । आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं । आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ 1. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है ।

✍ 2. एक पुस्तकालय हेतु **मात्र 1500/-** रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में **5 वर्षों तक 'विवेक-ज्योति'** प्रेषित की जायेगी ।

✍ 3. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे । दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा । यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है ।

- आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो । आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं । आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस.एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें ।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, IFSC CODE : CBIN0280804
पता – व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष – 098271 97535, 0771-2225269, 4036959
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर 1963 ई. में आरम्भ की गई थी । तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है । यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें । आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. 2000/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा । रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-1961, धारा-80जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है ।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!

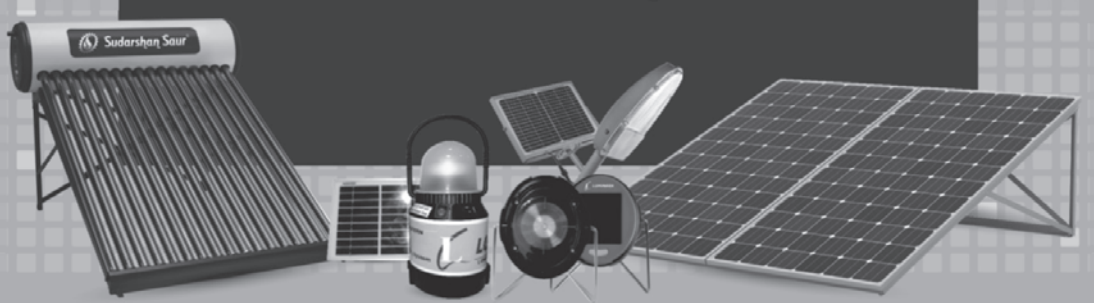

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ **मई २०२६** **अंक ५**

स्वामी विवेकानन्द स्तुतिः

शंकराचार्यवद् यस्मिन् प्रतिभाति तथैव च।
कारुण्यं बुद्धदेवस्य स्वामिनं तं नमाम्यहम् ।।
देशदेशान्तरं गत्वा सर्वे धर्माः समन्विताः।
वेदान्तदीपद्रष्टारं स्वामिनं तं नमाम्यहम् ।।
अत्यन्त प्राकृतस्यापि बोधनार्थं सुखाय च।
व्याख्यातो वेद-वेदान्तः स्वामिनं तं नमाम्यहम् ।।
आत्मनो मोक्षलाभार्थं जगद्धिताय ह्येव च ।
नवसंन्यासिसंघस्य स्थापकं तं नमाम्यहम् ।।
मूर्त्तिमन्तं नरत्वस्य, नरेन्द्र इति संज्ञितम्।
वन्दे नरऋषिं दिव्यं विवेकानन्दरूपिणम् ।।

– जिनके अन्तःकरण में आचार्य शंकर की प्रतिभा तथा बुद्धदेव की करुणा एक साथ विराजमान थी, उन्हीं स्वामीपाद को मैं प्रणाम करता हूँ।

जिन्होंने देश-देशान्तर में जाकर सब धर्मों में समन्वय स्थापित किया है, उन्हीं वेदान्त प्रदीप के दर्शयिता स्वामीपाद को मैं प्रणाम करता हूँ।

जिन्होंने वेद-वेदान्तों के जटिल तत्त्वों को सामान्य लोगों के लिये भी बोधगम्य करके उनकी व्याख्या की, उन्हीं स्वामीपाद को मैं प्रणाम करता हूँ।

जिन्होंने 'आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च' – आत्ममुक्ति और जगतहित, इस उद्देश्य को लेकर नवीन संघ की प्रतिष्ठा की एवं जो उनके संस्थापक बने, उन्हीं स्वामीपाद को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो मनुष्यत्व के मूर्तिमान स्वरूप तथा नरेन्द्र नाम से विदित हैं, उन्हीं विवेकानन्दस्वरूपी दिव्य नरऋषि को मैं प्रणाम करता हूँ।

मनुष्य स्वयं को पहचानने से भगवान को पहचान सकता है : रामकृष्ण परमहंस देव

मनुष्य स्वयं को पहचानने से भगवान को पहचान सकता है। 'मैं' कौन हूँ? हाथ, पैर, रक्त, मांस – इनमें से 'मैं' कौन है? इस तरह भलीभाँति विचार करने पर दिखाई देता है कि 'मैं' नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। जिस प्रकार प्याज का छिलका अलग करते जाओ तो छिलका ही छिलका निकलता जाता है, सार भाग कुछ मिलता ही नहीं, उसी प्रकार विचार करने पर 'मैं' पन के नाम से कुछ भी नहीं मिलता। अन्त में जो बचता है वही आत्मा या चैतन्य है। 'मैं' के दूर हो जाने पर भगवान दर्शन देते हैं ।

जब तक भगवान 'वहाँ वहाँ' (अर्थात् दूर या बाहर) हैं, तब तक अज्ञान है, जब वे 'यहाँ यहाँ' (अर्थात् अन्तर में) हैं, तभी ज्ञान है ।

श्रीरामकृष्ण अपनी छाती पर हाथ रखकर कहा करते – ''जिसके लिए भगवान यहाँ (अर्थात् हृदय में) हैं उसके लिए वहाँ (अर्थात् बाहर) भी हैं। जिसके लिए वे यहाँ नहीं, उसके लिए वहाँ भी नहीं हैं। जो उन्हें अपने हृदय-मन्दिर में देखता है, वह उन्हें जगत्-मन्दिर में भी देखता है।''

श्रीरामकृष्ण के एक युवक भक्त एक समय वेदान्त शास्त्रों के अध्ययन में अत्यधिक निमग्न हो गए थे। एक दिन उनसे भेंट होने पर श्रीरामकृष्ण ने कहा, ''क्यों जी, सुना कि तुम आजकल खूब वेदान्त-विचार में लगे हो। बहुत अच्छा। परन्तु सब विचार का उद्देश्य तो केवल यही है न कि 'ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या' इस सिद्धान्त पर पहुँचना! या और कुछ !'' युवक भक्त ने श्रीरामकृष्ण के इस कथन का समर्थन किया। उनके इन शब्दों ने मानो वेदान्त पर एक अभिनव प्रकाश डाला। सुनकर भक्त का मन विस्मय से भर गया। उन्होंने विचार किया – 'सचमुच, हृदय में केवल इतनी ही धारणा हो गई तो सम्पूर्ण वेदान्त का ही ज्ञान हो गया!' श्रीरामकृष्ण कहने लगे – ''श्रवण, मनन, निदिध्यासन। 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' इस सत्य को पहले सुना; फिर मनन यानी विचार करते हुए उसे मन में दृढ़ किया; इसके बाद निदिध्यासन अर्थात् मिथ्या वस्तु – जगत – का त्याग कर सत्य वस्तु ब्रह्म के ध्यान में मन को निमग्न किया। यही वेदान्त-साधना का क्रम है। परन्तु इसके विपरीत, अगर इस सत्य को सुना, समझा, पर मिथ्या वस्तु को त्यागने का प्रयत्न नहीं किया, तो इससे क्या फायदा? इस प्रकार का ज्ञान तो संसारासक्त लोगों के ज्ञान की तरह है, ऐसे ज्ञान से वस्तुलाभ नहीं होता। पक्की धारणा चाहिए, त्याग चाहिए – तभी तो होगा! नहीं तो, मुँह से तो कह रहे हो 'काँटा नहीं है' पर हाथ लगाते ही काँटा चुभता है और 'उफ' कर उठते हो। मुँह से तो कह रहे हो, 'जगत् है ही नहीं, असत् है – एकमात्र ब्रह्म ही है' आदि, परन्तु जैसे ही जगत् के रूप-रसादि भोग-विषय सामने आते हैं कि उन्हें सत्य मानकर बन्धन में पड़ जाते हो! पंचवटी में एक बार एक साधु आया था। वह लोगों के सामने खूब वेदान्तचर्चा करता। एक दिन सुना कि किसी औरत के साथ उसका कुछ अनैतिक सम्बन्ध हुआ है। फिर शौच के लिए उस ओर जाते समय देखा कि वह बैठा हुआ है। मैंने कहा, 'क्यों जी, तुम इतनी वेदान्त की बातें करते हो, पर यह सब क्या हो रहा है?' वह बोला, 'उसमें क्या है? मैं तुम्हें समझाए देता हूँ कि इसमें कोई दोष नहीं है। संसार जब तीन काल में झूठ ही है, तब क्या केवल यही बात सच होगी ? – यह भी झूठ ही है!' सुनकर मैं चिढ़कर बोला, 'तेरे ऐसे वेदान्त ज्ञान पर मैं थूक दूँ !' यह सब संसारी, विषयासक्त लोगों का ज्ञान है, इसे ज्ञान नहीं कहा जा सकता।''

सम्पादकीय

भारतीय संस्कृति के दो महान आचार्य : स्वामी विवेकानन्द और श्रीशंकराचार्य

भारतीय संस्कृति ऋषि, मुनियों, अवतारों की जननी है, जिन्होंने केवल भारत को ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व को एक नयी दिशा दी। इनमें वे दो विभूतियाँ प्रमुख हैं, जो देशवासियों द्वारा सदा स्मरणीय और वन्दनीय हैं। चूँकि भारत के आचार्यों का यह दायित्व है कि वे विश्व के अन्य भागों में जाकर उन्हें सत्पथ प्रदर्शित करेंगे, इसलिये भारतीय आचार्य विश्वगुरु होते हैं, विश्व पथप्रदर्शक होते हैं। इसलिये हमारे इन आचार्यों का भारत देश ही नहीं, पूरा विश्व ही सदा ऋणी रहेगा। वे दो विभूतियाँ हैं – श्रीशंकराचार्य जी और स्वामी विवेकानन्द जी। इन दोनों विभूतियों ने बड़ी विषम परिस्थिति में सनातन धर्म के मूल तत्त्वों की रक्षा की और जनमानस में इसके प्रति चेतना जागृत की। आइये, बड़े ही संक्षेप में इन महान विभूतियों पर चिन्तन करते हैं।

यह लोकप्रसिद्ध है कि जब-जब लोक आस्था, विश्वास, धर्म और संस्कृति की हानि होती है, तब कोई-न-कोई युगपुरुष अवतीर्ण होकर उसकी पुन:स्थापना करते हैं और लोक को नव ज्ञानालोक प्रदान करते हैं। जब विराट हृदय करुणावतार भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित बौद्ध धर्म में कालान्तर में संकीर्णता और विकृतियाँ आ गयीं, तब लगभग २५०० वर्ष पूर्व पुण्यभूमि भारतवर्ष के दक्षिण भारत के कालाडी नामक ग्राम में भगवान शंकराचार्य जी का प्रादुर्भाव हुआ। बौद्ध धर्म में कालान्तर में प्रचलित अन्धविश्वासों और कुप्रथाओं ने भारतीय जन-मानस को इतना दुष्प्रभावित किया कि वे मूल धर्म और संस्कृति को भूल गये और देश में एक विचित्र विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। देशवासी इन कुप्रथाओं और अन्धविश्वासों को ही सत्य धर्म मानकर अपना तेज-ओज खो बैठे तथा दिशाहीन हो गये। सनातन धर्मविमुख मानवों की इस दुर्दशा को देखकर करुणार्द्र हो भगवान शंकराचार्य जी ने भारत भूमि पर अवतरित होकर पुन: वैदिक धर्म की स्थापना की, लोकमानस को सनातन धर्म की ओर उन्मुख किया, सनातन वैदिक धर्म के प्रति उनमें नव चेतना जागृत की।

शंकराचार्यजी ने सम्पूर्ण भारत में चार मठों को स्थापित किया। उन्होंने लोक में विभिन्न वामाचारों और कुत्सित साधनाओं का प्रतिरोध और एकमेव अखण्ड अद्वय निष्कल ब्रह्म का प्रतिपादन किया। उनके द्वारा प्रतिपादित अद्वैत वेदान्त आध्यात्मिक जगत के समस्त संशयों और भ्रमों का विखण्डन करता है। उन्होंने यद्यपि अद्वैत वेदान्त की स्थापना की, किन्तु उनके द्वारा रचित देवी-देवताओं के विभिन्न स्तोत्र उनके हृदय में प्रवाहित भक्ति-सुरसरि को इंगित करते हैं। उन्होंने गीता-उपनिषदादि शास्त्रों के भाष्य लिखकर उसके वास्तविक तात्पर्य को प्रकट किया। लुप्त तीर्थों का उद्धार किया। युगाचार्य शंकराचार्य जी के प्रति स्वामीजी की दृष्टि क्या थी, आइये उसका अवलोकन करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी शंकराचार्य जी के सम्बन्ध में अपने मद्रास के व्याख्यान में कहते हैं – ''भारत को जीवित रहना था, इसलिये पुन: भगवान का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने घोषणा की थी, 'जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब मैं आता हूँ', वे पुन: आए। इस बार भगवान का दक्षिणी प्रदेश में आविर्भाव हुआ। उस ब्राह्मण युवक का, जिसने सोलह वर्ष की उम्र में ही अपनी सारी ग्रन्थ-रचना समाप्त की, उसी अद्भुत प्रतिभाशाली शंकराचार्य का

अभ्युदय हुआ। इस सोलह वर्ष के विलक्षण बालक और उसकी रचनाओं पर आधुनिक सभ्य जगत आश्चर्यचकित हो रहा है। उसने समग्र भारत को उसके प्राचीन विशुद्ध मार्ग पर लाने का संकल्प किया था।''[१]

स्वामी विवेकानन्द श्रीशंकराचार्यजी के अवतारोद्देश्य को बताते हुए कहते हैं – ''तातार, बलूची आदि भयानक जातियों के लोग भारत में आकर बौद्ध बने और हमारे साथ मिल गये। अपने राष्ट्रीय आचारों को भी वे लोग अपने साथ लाये। इस तरह हमारा राष्ट्रीय जीवन अत्यन्त भयानक पाशव आचारों से भर गया। उक्त ब्राह्मण युवक (शंकराचार्य) को बौद्धों से विरासत में यही मिला था।''[२] ऐसी परिस्थिति में शंकराचार्यजी का अवतरण होता है। शंकराचार्यजी ने उपरोक्त कुप्रथाओं, कुसंस्कारों और पाशविक आचारों से मुक्त करने और सनातन धर्म की पुन:प्रतिष्ठा करने का प्रण लिया और उसे वे जीवन के अन्त तक करते रहे। कुछ लोगों ने शंकराचार्य को अनुदार कहा, लेकिन स्वामीजी इसके विपरीत कहते हैं – ''मैं नहीं जानता कि लोग शंकराचार्य को अनुदार मत का पोषक क्यों कहते हैं। उनके लिखे ग्रन्थों में ऐसा कुछ भी नहीं मिलता, जो उनकी संकीर्णता का परिचय दे।''[३]

श्रीशंकराचार्यजी ने तत्कालीन भारत के चारों दिशाओं में भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म के ध्वजास्वरूप चार धामों की स्थापना की। सनातन धर्म को पुन: प्रतिष्ठित किया और जगत को शाश्वत धर्म से परिचित कराया। उनके जीवन की अनेक घटनाएँ लोगों को सनातन वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धावनत करती हैं। एक ओर शंकराचार्यजी ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की, तो दूसरे विभिन्न देवी-देवताओं के भक्तिमय स्तोत्रों की रचना कर जन-मानस में भक्ति का उद्रेक किया।

कालक्रम से भारत के धार्मिक जगत में ह्रास हुआ। विभिन्न आक्रान्ताओं ने भारत पर सैकड़ों वर्ष राज किया और भारतीय जन-मानस को शारीरिक और मानसिक दोनों से परतन्त्र बना दिया। भारतवासी अपनी गरिमा, गौरव, आत्मसम्मान सब कुछ भूल गये और विश्व में एक निरीह दाससुलभ जीवन व्यतीत करने लगे। ऐसी विषम परिस्थिति में भक्तिभूमि बंगाल में प्रखर वेदान्तोद्घोषक स्वामी विवेकानन्द का प्राकट्य हुआ। उन्होंने भारतवासियों में स्वाभिमान और आत्मगौरव को जागृत किया। उन्होंने परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़े भारतवासियों को अँग्रेजी सत्ता से मुक्त करने और देश के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर करने हेतु युवाशक्ति का आह्वान किया।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत में व्याप्त गरीबी, अशिक्षा, अस्वास्थ्य आदि को दूर करने एवं पुन: सनातन धर्म की प्रतिष्ठा हेतु रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जो संस्था आज सम्पूर्ण विश्व की अपने विभिन्न कार्य-कलापों द्वारा सेवा कर रही है। उन्होंने अभिनव सेवादर्श की स्थापना की। मुक्ति हेतु सेवायोग का प्रवर्तन किया। उन्होंने अपने गुरु श्रीरामकृष्ण देव के आदर्श 'शिवभाव से जीवसेवा' का सम्पूर्ण विश्व में प्रवर्तन किया। उन्होंने मानव में अन्तर्निहित दिव्यता की अभिव्यक्ति हेतु सेवायोग को महत्त्वपूर्ण माना। उनकी दृष्टि में धर्म-शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य की अन्तर्निहित दिव्यता को प्रकट करना ही है। उन्होंने चार योगों का समन्वय और धर्मसमन्वय किया और विश्व में धार्मिक सद्भाव का संदेश दिया। वे मनुष्य को साक्षात् ईश्वर का स्वरूप मानते थे। उन्होंने कहा कि मैं उस ईश्वर की पूजा करता हूँ, जिसे अज्ञानी लोग मनुष्य कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी ने धर्म, संस्कृति, शिक्षा और सेवा का अभिनव आयाम दिया। उन्होंने वन के वेदान्त को व्यावहारिक जीवन में प्रयोग का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने अध्यात्म की भित्ति पर राष्ट्रीय जागरण किया। उनके राष्ट्र-सेवा के आह्वान पर कितने युवकों ने अपने राष्ट्र के सेवायज्ञ में स्वयं को समर्पित कर दिया। कितने युवा-क्रान्तिकारियों ने राष्ट्र की स्वतन्त्रता हेतु अपना बलिदान देकर देश स्वतन्त्र कराने में योगदान दिया। कितने युवकों ने स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित संस्था रामकृष्ण मिशन में अपना योगदान देकर आत्ममुक्ति और जगतहित हेतु अपने को समर्पित किया और आज भी कर रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त विभिन्न विषयों पर व्याख्यान और उनके द्वारा लिखित ग्रन्थ आज भी करोड़ों जन-मानस का मार्गदर्शन कर रहे हैं। विवेकानन्द का समन्वयकारी दर्शन ईश्वरप्राप्ति और परस्पर सौहार्द का श्रेष्ठ मार्ग है। रामकृष्ण-विवेकानन्द भावादर्श पर चलकर देश-विदेश में करोड़ों लोग अपना मानव-जीवन सार्थक कर रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रीशंकराचार्य जी और स्वामी विवेकानन्द जी; इन दोनों महापुरुष द्वारा विश्व को दिया गया योगदान अमिट, अविस्मरणीय और अनुपम है। विश्व अनन्त काल तक इन आचार्यों का, इन महान विभूतियों का ऋणी रहेगा और भारतवासी इनसे गौरवान्वित होकर अपने गौरव को अक्षुण्ण रखने में सदा प्रयत्नशील रहेंगे। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** विवेकानन्द साहित्य, ५/१५८ **२.** वही, ५/१५९ **३.** वही, ५/१६१

श्रीशंकराचार्य और मातृशक्ति की उपासना

स्वामी ईशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

श्रीश्रीजगन्माता के हाथों में ही जीवों की मुक्ति का उपाय है। इसलिए सभी सम्प्रदायों में किसी न किसी प्रकार से शक्ति की उपासना देखी जाती है। श्रीशंकराचार्य जी अपने सुविख्यात 'अन्नपूर्णा स्तोत्र' में देवी पराशक्ति को 'मोक्षद्वारकपाटपाटनकरी' एवं 'लीलानाटकसूत्रभेदनकरी' कहकर वन्दना करते हैं।

इसका अर्थ है कि देवी मुक्ति के द्वार की उद्घाटनकारिणी हैं एवं संसार-लीला रूपी नाटक के प्रभावों का नाश करनेवाली भी हैं। हमारा आज का प्रतिपाद्य विषय है – 'श्रीशंकराचार्य एवं मातृशक्ति की उपासना'। प्रतिपादन की सुविधा हेतु इस विषय को हमलोग तीन भागों में विभाजित करेंगे। प्रथम, आचार्य शंकर के जीवन में मातृभाव की उपासना, द्वितीय आचार्य की लेखनी में मातृ उपासना का भाव एवं तृतीय आचार्य की परम्परा में मातृ-उपासना का प्रवाह।

आइये, अभी हम आचार्य शंकर के जीवन में घटित कुछ दिव्य घटनाओं का स्मरण कर लें। एक बार आचार्य शंकर अपनी ब्रह्मचर्यावस्था में गुरुगृह के नियमानुसार भिक्षा के लिए एक ब्राह्मण के घर पर गये। वे गृहस्थ ब्राह्मण अत्यन्त दरिद्र थे। इसलिये ब्राह्मणपत्नी ने केवल एक आँवला ही भिक्षा में शंकर को दिया। उनकी यह अवस्था देखकर बालक शंकर ने देवी लक्ष्मी का एक स्तोत्र किया, जो 'कनकधारा स्तोत्र' के नाम से विख्यात हुआ। यह स्तोत्र आचार्य शंकर के बाल्यकाल से मातृभक्ति का एक अनन्य उदाहरण है। इस स्तोत्र से बालक शंकर ने देवी से यह प्रार्थना की थी कि वे सदा देवी की आराधना कर सके और देवी हमेशा उनके साथ रहें – **मामेव मातरनिशं कलयन्तु मान्येः** (कनकधारा स्तोत्रम्-१६)। इसमें आचार्य ने सर्वदा मातृ-आराधना में लीन रहने की प्रार्थना की।

उसके कुछ बरसों बाद की घटना हैं। बालक शंकर अब आचार्य शंकर के रूप में विख्यात हो गये थे। वे मुक्तिक्षेत्र स्वर्णमयी काशी में एक दिन प्रभात काल में अपने शिष्यों के साथ स्नान करने गए। उन्होंने देखा कि एक स्त्री एक शव को लेकर मणिकर्णिका की कम चौड़ाई वाले रास्ते में बैठी हुई हैं। आचार्य शंकर ने उस नारी से शव को हटा एक किनारे करने का अनुरोध किया। यह सुनकर शोकग्रस्त उस नारी ने कहा – आचार्य, आप स्वयं ही शव को हटने के लिये बोलिए। यह अद्भुत बात सुनकर आचार्य शंकर ने पुनः उस नारी से कहा – 'माता ! क्या शोक से आपकी बुद्धि चली गयी है? एक शव कैसे स्वयं हट पाएगा? यह बात सुनकर उस महिला ने कहा – 'क्यों यतिवर! आपके मत में तो शक्तिहीन ब्रह्म की ही जगत-सृष्टि है, तब यह शव स्वयं क्यों नहीं हटेगा?' उस नारी की ज्ञानमयी वाणी सुनकर आचार्य स्तम्भित रह गए। लेकिन कहाँ गयी वह रमणी? कहाँ गया वह शव? एक मुहूर्त के अन्तराल में सभी आँखों के सामने से अदृश्य हो गया! शंकराचार्यजी समझ गए कि स्वयं देवी आदि पराशक्ति अपना अस्तित्व बताकर यह स्पष्ट कर दी हैं कि देवी की लीला-कटाक्ष से ही इस जगत की सृष्टि, स्थिति एवं संहार हो रहा है। तब आचार्य ने एक देवी भवानी का स्तोत्र 'श्रीभवान्यष्टकम्' की रचना की। इस स्तोत्र में वे माँ के शरणागत बालक सदृश लिखते हैं –

विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये ।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि।।
(भवान्यष्टकम्-७)

आचार्य के जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है –

मंडन मिश्र के साथ शास्त्रार्थ में विजयी होना। मंडन मिश्र के पराजय के बाद उनकी धर्मपत्नी उभयभारती देवी, जो स्वयं माँ सरस्वती की अवतार थीं, उन्होंने भी शंकराचार्य जी

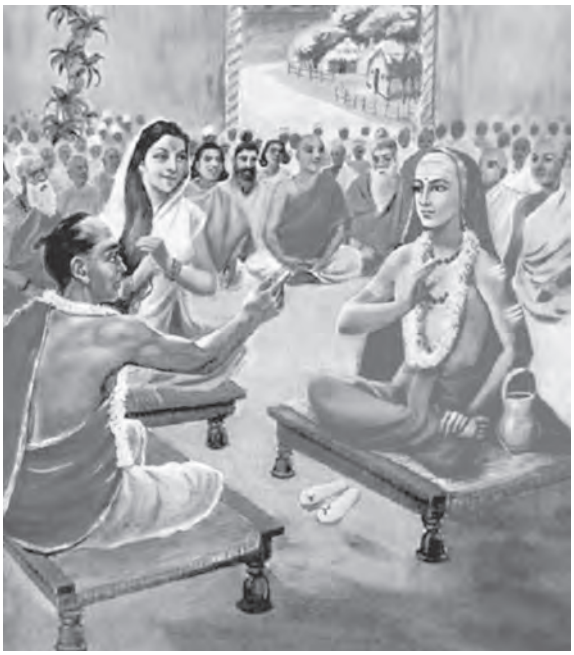

से कुछ प्रश्न पूछे थे। कुछ समय के अन्तराल में आचार्य ने उनके सभी प्रश्नों के यथावत उत्तर प्रदान किये। तब उभयभारती देवी ने अपने पति का पराजय स्वीकार कर लिया और उन्हें संन्यास आश्रम में दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्रदान कीं एवं वे स्वयं योगबल से अपने स्वरूप में लीन होने का प्रयत्न करने लगीं। आचार्य शंकर को उभयभारती देवी के जन्म का रहस्य ज्ञात था। इसीलिए उन्होंने हाथ जोड़कर उभयभारती देवी से प्रार्थना की – 'हे जननी, शृंगेरी में मैं एक मठ स्थापित करना चाहता हूँ। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप वहाँ पर अधिष्ठित होकर सबको विद्यादान दीजिये। मैं आपकी ही उपासना करता हूँ। आप कृपापूर्वक मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिए।' उभयभारती देवी ने कहा – 'आप शृंगेरी मठ में श्रीयन्त्र की स्थापना कीजिये। मैं उस यन्त्र में रहकर आपकी सभी इच्छाओं की पूर्ति करूँगी।' इसके बाद आचार्य शंकर ने शृंगेरी मठ में विद्याधिष्ठात्री शारदा देवी की प्रतिष्ठा की और उनकी नित्य अर्चना की व्यवस्था की। आचार्यजी ने स्वयं भुजंगप्रयात छन्द में 'शारदाभुजंग-प्रयाताष्टकम्' नामक स्तोत्र की रचना की, जिसका आज भी प्रतिदिन मठ में पाठ होता है। इस स्तोत्र में आचार्य एक स्थान पर लिखते हैं –

कटाक्षे दयार्द्रां करे ज्ञानमुद्रां
कलाभिर्विनिद्रां कलापैः सुभद्राम् ।
पुरस्त्रीं विनिद्रां पुरस्तुङ्गभद्रां
भजे शारदाम्बामजस्त्रं मदम्बाम् ।।
(शारदा भुजङ्ग प्रयाताष्टकम् - २)

– मैं उस 'शारदाम्बा' माँ का भजन करता हूँ, जिसके कटाक्ष दयार्द्र हैं, जो अपने हाथ में ज्ञानमुद्रा धारण की हुई हैं, जो कलाओं से सदा परिपूर्ण हैं, जो सदा ज्ञानदात्री हैं, नृत्य-गीत आदि कला से सर्वदा सुप्रसन्ना हैं, कलाप मयूर पिच्छ आदि से सुशोभित हैं और जो तुंगभद्रा नदी के तट पर निवास करती हैं।

यह घटना आचार्य के जीवन में मातृ-उपासना का अनन्य उदाहरण है। क्योंकि आचार्य को यह ज्ञात था कि देवी की कृपा के बिना अद्वैत विद्या का प्रसार असम्भव है।

भारत के सप्त क्षेत्रों में कांची विशेष है, जो एक साथ शैव, वैष्णव एवं शाक्त की भूमि है। यहाँ की अधिष्ठात्री देवी का नाम कामाक्षा है। कहा जाता है कि कामाक्षी के नेत्र इतने तेजोमय थे कि कोई भी उस मूर्ति की ओर देख नहीं पाता था। इसलिए आचार्य शंकर ने देवी के समस्त तेज को सामने रखे हुए श्रीयंत्र में स्थापित कर दिया एवं वहाँ पर देवी का पूजा-विधान कर दिया, जो पूजा-व्यवस्था अब तक होती चली आ रही है। इस प्रसंग में यह भी कह सकते हैं कि आचार्य प्रवर्तित पंच देवताओं (गणेश, शिव, सूर्य, नारायण एवं दुर्गा) की उपासना में अन्यतम है शक्ति की उपासना। पंच देवताओं को निर्गुण ब्रह्म की सगुण अभिव्यक्ति मानी जाती है। आचार्य शंकर अपने शारीरक भाष्य में लिखते हैं – '**तदानुग्रहहेतुके नैव च विज्ञानेन मोक्षसिद्धः**' अर्थात् जीव एवं ब्रह्म के एकत्व ज्ञान के कारण मोक्ष की जो सिद्धि होती है, वह ज्ञान परमेश्वर के अनुग्रह के बिना सम्भव नहीं हो पाता अर्थात् जीवब्रह्मैकत्व ज्ञान भी सगुण ब्रह्म की कृपा के बिना सम्भव नहीं है।

कश्मीर के शारदा पीठ में सरस्वती देवी का एक प्रतिष्ठित देवालय है। वहाँ एक 'सर्वज्ञपीठ' स्थापित था। जो सर्वज्ञ अर्थात् पराविद्या को प्राप्त कर ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित हुए हैं, वे ही इस पीठ में बैठने के एकमात्र अधिकारी माने

जाते थे। उनको सभी सम्प्रदायों के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर वाग्देवी की सम्मति लेकर पीठ पर बैठने का अधिकार अर्जित करना पड़ता था। अपने शिष्यों के अनुरोध पर आचार्य शंकर ने समस्त सम्प्रदाय के विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर उनकी सम्मति से श्रीमन्दिर के पास शारदा कुंड के पवित्र जल का पान कर माँ शारदा देवी की अर्चना की थी। उस समय सबने देवी शारदा की देववाणी का श्रवण किया – ''हे वत्स शंकर ! मैं सन्तुष्ट हूँ। आज तुम्हें 'सर्वज्ञ' इस उपाधि से विभूषित कर रही हूँ। तुम आनन्द से मेरे सर्वज्ञपीठ पर विराजमान होओ। एकमात्र तुम्ही इस पीठ पर बैठने योग्य हो।'' आचार्य ने विनम्रता से सर्वज्ञ पीठ पर विराजमान होकर भगवती के स्वरूप और माहात्म्य का कीर्तन किया। यह अविस्मरणीय घटना जैसे देवी का आचार्य के प्रति कृपा का प्रमाण है, वैसे ही आचार्य का भी देवी के प्रति अनन्य भक्ति का निदर्शन है।

कश्मीर के कई स्थानों में भ्रमण करते हुए देवी की प्रेरणा से शंकराचार्यजी 'सौन्दर्यलहरी' की रचना करते हैं, जिसमें देवी की महिमा का वर्णन है। इसमें अद्भुत १०० श्लोक हैं। इसमें आचार्य देवी के तत्त्वसौन्दर्य, रूपसौन्दर्य, महिमासौन्दर्य एवं गुणसौन्दर्य आदि कई सौन्दर्यों का वर्णन करते हैं। इसके प्रथम श्लोक में ही आचार्य लिखते हैं –

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि ।
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।।

अर्थात् शिव जब शक्ति से संयुक्त होते हैं, तभी वे सृष्टि-स्थिति-संहार करने में समर्थ होते हैं। अन्यथा वे परम देवता स्पन्दित होने में भी असमर्थ हैं। इसलिए सृष्टि-स्थिति-संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि देवता भी जगत जननी की आराधना करते हैं। कैसे आराधना करते हैं? दूसरे ही श्लोक में आचार्य कहते हैं – ब्रह्मा देवी के चरणरज से इस जगत की सृष्टि करते हैं। देवी के चरण रज से सृष्ट होने वाले इस जगत को अमूल्य धन मानकर विष्णु शेषनाग के रूप में इस सृष्टि को अपने सहस्र फण में धारण करते हैं एवं महादेव प्रलय के समय में उसी जगत को भस्मीभूत कर उस भस्म को अपने शरीर में लगाते हैं। इसीलिए इस जगत की सृष्टि, स्थिति एवं संहार मानों त्रिदेवों द्वारा देवी की आराधना है। २४वें श्लोक में आचार्य कहते हैं पराशक्ति की कटाक्ष के निर्देश मात्र से ही पंच ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मा, हरि, रूद्र, ईशान, एवं सदाशिव सृष्टि-स्थिति-लय-तिरोधान एवं अनुग्रह रूप कर्म करने में समर्थ होते हैं। इसीलिए 'ललितापंचरत्न' स्तोत्र में आचार्य कहते हैं कि इस पराशक्ति की महिमा को वेदान्त शास्त्रों के माध्यम से जाना जा सकता है। यद्यपि जगन्माता भवानी का स्वरूप शास्त्र, वाक्य एवं मन के अगोचर है, (निगम-वाग्मसातिदूरम्)। सौन्दर्य लहरी के ९८नं श्लोक में आचार्य कहते हैं कि ब्रह्मा की पत्नी सरस्वती, विष्णु-जाया लक्ष्मी एवं शिवसीमंतिनी दुर्गा, ये सभी उस परब्रह्म-महिषी की ही विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। उनका प्रकृत स्वरूप तुरीय एवं सबके अगम्य भी है। उन्होंने इस ब्रह्माण्ड को मोहित कर रखा है –

तुरीया कापि त्वं दुरधिगमनिःसीममहिमा
महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषि ।।

देवीमाता की कृपा को छोड़कर दैवी अनुग्रह की प्राप्ति असम्भव है। इसलिए प्रज्ञासिन्धु श्रीशंकर लिख रहे हैं – 'मैं एक दीन हूँ। आपसे बहुत दूर रहता हूँ। लेकिन नीलोत्पल की तरह कोमल आपकी दृष्टि सुदूर प्रसारी है। उस कृपा-दृष्टि से आप मुझे स्नान करवाइए। उससे मैं धन्य हो जाऊँगा। इससे आपकी कोई क्षति नहीं होगी। क्योंकि चन्द्र-किरण निष्पक्ष होकर सर्वत्र विकिरित होकर अरण्य एवं प्रासाद को भी आलोकित करती है। (सौन्दर्यलहरी-५७)।

इस श्लोक के माध्यम से आचार्य शंकर यह समझाने का प्रयास कर रहे हैं कि माँ अम्बिका का कृपा-कटाक्ष कोमल है एवं समस्त जीवों को अनुगृहीत करने में सक्षम है। जो लोग देवी की उपासना करते हैं, वे लोग धन्य हैं। क्योंकि देवी के अनुग्रह के बिना देवी की उपासना करना कभी भी सम्भव नहीं है। इसलिए आचार्य सौन्दर्य लहरी में लिखते हैं – 'भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरी। क्या कहते हुए? लक्ष्मीधर लिख रहे हैं – तां भजन्ति सेवन्ते त्वां भवन्त धन्याः तत् प्रसादवशात् कृतार्थाः कतिचन विरलाः चिदानन्दलहरीं चित् ज्ञानम् तदाकारः आनन्दः निरतिशयसुखं तस्य लहरीं उत्सेकरूपाम्।'' जब देवी के कृपा-कटाक्ष से हमारे बन्धन कट जाते हैं, तब हमें परमानन्द की अनुभूति होती है। इसलिए सौन्दर्यलहरी की फलश्रुति में आचार्य लिखते हैं –

चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः।
परानन्दाभिख्यम् रसयति रसं त्वद्भजनवान् ।।

अन्तिम श्लोक में आचार्य लिख रहे हैं – ''हे जननी, इन श्लोकों से आपकी स्तुति करना दीप जलाकर सूर्य की आराधना करना है, चन्द्रकान्त मणि से निकला हुआ जल देकर चन्द्र की अर्चना करना एवं सागर के जल से सागर को स्नान कराने जैसा है। हे माता, आप वाग्जननी, वाक्य-समूह की जननी हैं, इसीलिए मैंने आपके ही वाक्य से आपकी स्तुति की है। इसमें मेरा कोई कृतित्व नहीं है।'' सौन्दर्यलहरी की रचना मानो आचार्य का गंगाजल से ही गंगा की पूजा के समान है।

आचार्य शंकर केवलाद्वैत वेदान्ती थे, किन्तु उनके प्रवर्तित दशनामी सम्प्रदायों में समयाचार मत अनुसरण करते हुए शक्ति-उपासना की धारा परिलक्षित होती है, जो उनके परमगुरु श्री गौडपाद से प्राप्त हुई थी। क्योंकि श्रीगौडपाद जी ने 'श्रीविद्यारत्नसूत्रम्' एवं 'शुभगोदयस्तुति' जैसे शाक्त शास्त्रों की रचना की थी। आचार्य ने अपने प्रवर्तित चार मठों में समयाचार अनुसार शक्ति-उपासना का प्रवर्तन किया था। उसका अनन्य प्रमाण उनके द्वारा रचित मठाम्नाय या मठानुशासन है।

शारदामठाम्नायके अनुसार पश्चिम द्वारकाधाम की आराध्या देवी भद्रकाली हैं एवं देवता सिद्धेश्वर हैं –

द्वारकाख्यं हि क्षेत्रं स्याद् देवः सिद्धेश्वरः स्मृतः।
भद्रकाली तु देवी स्यादाचार्यो विश्वरूपकः।।

पूर्व में स्थित गोवर्धन मठ की देवी विमला हैं एवं देवता जगन्नाथ हैं –

पुरुषोत्तमन्तु क्षेत्रम् स्याज्जगन्नाथोऽस्य देवता।
विमलाख्या हि देवी स्यादाचार्यः पद्मपादकः ।।

उत्तराम्नाय ज्योर्तिमठ की देवी पूर्णागिरि हैं एवं देवता नारायण हैं –

बद्रीशाश्रमः क्षेत्रं देवो नारायणः स्मृतः ।
पूर्णागिरि च देवी स्यादाचार्यस्तोटकः स्मृतः।।

एवं दक्षिण में श्रृंगेरीमठ के आम्नाय के अनुसार देवी कामाक्षी हैं और देवता आदि वराह हैं –

कामाक्षी तस्य देवी स्यात् सर्वकामफलप्रदा ।
पृथ्वीधराख्या आचार्यस्तुङ्गभद्रेति तीर्थकम् ।।

आचार्य शंकर पराशक्ति और उनकी अभिव्यक्ति से सम्बन्धित अपने 'प्रपंचसारतन्त्र' ग्रन्थ में माँ शारदा परमेश्वरी की शब्द ब्रह्मस्वरूप के रूप में व्याख्या करते हुए कहते हैं – 'अ क च ट त प थ आदि सात वर्ण वर्ग द्वारा जिनका मुख्य मंडल दो बाहू, दो चरण, नाभि एवं हृदयविशिष्ट अवयवसमूह का प्रकाश हुआ है, वही शाक्षता, विश्वयोनि शारदा सबको चित्तशुद्धि प्रदान करें' –

अकचटतपयाद्यैः सप्तभिर्वर्णवर्गार्विरचित-
मुख्यबाहा-पादमद्ययाख्यहृदका।
सकलजगधीशा शाक्षता विश्वयोनी-
र्वितरतु परिशुद्धीन् चेतसः शारदा वः।

अर्थात् पचास वर्ण देवी के नाना अंगों में विराजित हैं। देवी वर्णात्मिका हैं और इन्हीं वर्णों से समस्त जगत की सृष्टि हुई है। माँ अपने ही उपादान से समस्त सृजन कर स्वयं ही उसमें ओतप्रोत हैं। जगत के अन्दर और बाहर सर्वत्र माँ शारदा विराजमान हैं। वे निखिल विश्वमयी हैं। वे श्रृंगेरी-परम्परा में गुरुमूर्ति भी हैं। वर्तमान जगतगुरुगण देवी की अपार करुणा के प्रकाशस्वरूप हैं। कहा गया है – "Sharada is Guru rupini. She is the form of the Guru. Through the person of the Jagadguru, she dispenses her grace." (The Greathness of Sringeri-150)

इसी गुरुशक्ति के माध्यम से माँ शारदा जगत की सभी अज्ञानता का नाश करती हैं। साधारणत: देवी मन्दिर में देवी अर्थात् पराशक्ति के साथ शिवलिंग या अन्य किसी मूर्ति की शक्तिमान के रूप में सर्वदा पूजा की जाती है। किन्तु श्रृंगेरी-परम्परा में देवी शारदा के एक साथ शक्तिमान होने के कारण वहाँ पृथक कोई शक्तिमान मूर्ति की उपासना नहीं की जाती है। देवी एक ही आधार में ब्रह्म एवं शक्ति हैं।

जीवों के हृदय में ज्ञान एवं वैराग्य के उदय होने पर वास्तविक ब्रह्म-जिज्ञासा प्रारम्भ होती है, जो हमारे मुक्ति के द्वार को उन्मोचित करती है। इसलिए मानव की सर्वश्रेष्ठ एवं सच्ची सम्पत्ति ज्ञान एवं वैराग्य है, जो देवी की कृपा से सहजता से ही प्राप्त किया जा सकता है। क्योंकि वे 'शिवज्ञान-प्रदायिन्यै' – शिवज्ञान प्रदायिनी हैं। आचार्य शंकर माँ से प्रार्थना करते हैं – ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वति। इसीलिए शंकाराचार्य जी द्वारा प्रवर्तित परम्परा में शक्ति-आराधना का इतना महत्व है। ○○○

रामगीता (६/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

मन्थरा ने जो सफलता पाई, उसका क्या कारण है? कैकेयीजी ने जब मन्थरा से यह समाचार सुना कि राम को युवराज पद दिया जा रहा है, तो बड़ी प्रसन्न हो गईं। वे यहाँ तक कहने लगीं कि मन्थरा, अगर यह समाचार सत्य है, तो तुम जो चाहोगी, वही मैं तुम्हें दूँगी। जिनके इतने उच्च विचार दिखाई दे रहे हैं, अन्त में वे इतना कैसे बदल गयीं? उसका उत्तर यह है कि कैकेयीजी के चित्त में, बुद्धि में और मन में श्रीराम के प्रति क्या भावना थी? कैकेयीजी मन से श्रीराम से राग करती हैं। बुद्धि से उनको ऐसा लगता है कि राम बहुत श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न हैं। उनको साथ-साथ यह भी दिखाई देता है कि श्रीराम को मेरे प्रति इतना स्नेह है, इतना हमें वे चाहते हैं कि अपनी माँ कौशल्या को भी उतना नहीं चाहते। पर चित्त में जो गहराई से छिपा हुआ था, वह क्या था? मन्थरा ने हार क्यों नहीं मानी? मन्थरा के स्थान पर अगर कोई दूसरा होता, तब तो भाग खड़ा होता, मुँह बन्द कर लेता, डर जाता। क्योंकि कैकेयीजी ने प्रारम्भ में मन्थरा को इतनी धमकी दी, इतने कठोर शब्दों में उसकी निन्दा की, उसके कूबड़ की निन्दा की, घरफोड़ी कहा और यहाँ तक कहा कि इस तरह से झगड़ा लगानेवाली बात फिर कभी करेगी, तो तेरी जीभ निकाल लूँगी –

तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी । २/१३/८

अब इतना सुनने के बाद भी क्या कोई व्यक्ति कुछ कहने का साहस कर सकेगा? इतना ही नहीं, मन्थरा के कैकेयेजी के पास जाते ही इतनी बड़ी चोट मन्थरा को लगी कि वह एक बार हिल गई। जब मन्थरा ने नाटकीय मुद्रा बनाई, आँसू बहाने का ऐसा अभिनय किया, जैसे वह बहुत दुखी हो। जब वह महारानी कैकेयी के पास गई, तो महारानी कैकेयी पहले हँसीं। क्योंकि उसका वह अभिनय पहली बार नहीं था। कभी-कभी वह ऐसा करती रहती थी और उसका कारण लक्ष्मणजी बनते थे। लक्ष्मणजी जानते थे कि यह कूबरी शरीर से ही नहीं, हृदय से भी बड़ी कुटिल कूबरी है। लक्ष्मणजी की भूमिका रामायण में वैराग्य की है –

लखन राम सीता सहित राजत पर्ण कुटीर ।
भगति ज्ञान वैराग्य जनु सोहत धरे सरीर ।।

मानो यह कूबरी न जाने किस समय, क्या कर बैठेगी, इसका कोई ठिकाना नहीं है। लक्ष्मणजी जब कभी उसकी कोई ऐसी चेष्टा देखते थे, तो ऐसा फटकारते थे कि वह आँसू बहाते हुये कैकेयी के पास आ जाती थी। कैकेयीजी पूछती थीं, क्या हुआ? तब कहती, लक्ष्मण ने मुझे ऐसा कह दिया, मुझे फटकार दिया। कई बार वे समझा देती थीं कि नहीं, नहीं, तुम चिन्ता मत करो, लक्ष्मण ने कह दिया होगा, लेकिन अब थोड़े ही लक्ष्मण तुम्हारे साथ कोई कठोर व्यवहार करेगा। वह तो वाणी से ही कुछ कह दिया। वह स्वयं स्वभाव से, भीतर से बड़ा कोमल है। आज भी जब मन्थरा आई, तो कैकेयीजी ने पूछा –

दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें । २/१२/७

आज फिर लक्ष्मण ने कुछ शिक्षा दे दिया है क्या कि पुराना नाटक दुहराया जा रहा है। फिर तो मन्थरा ने और गम्भीर मुँह बना लिया। तब कैकेयीजी घबरा गईं। यह नाटक नहीं लग रहा है। उन्होंने घबरा कर पूछा कि यह तो बताओ कि सब कुशल तो है न ! कोई बड़ी घटना तो नहीं हो गई? कैकेयीजी ने कुशल पूछा। सबसे पहले किसका कुशल पूछा? पहले राम का कुशल पूछा और बाद में राजा दशरथ जी का नाम लिया –

सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।
राम कुशल हैं, राजा कुशल से तो हैं? और फिर –
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु ।।
२/१३/०

उसके बाद कहीं भरतजी का नाम लिया। सबसे अधिक चिन्ता उनको राम की है। पर यह सब होने के बाद मन्थरा के हृदय में चोट लग रही है। कैकेयीजी धमका रही हैं, पर वह अडिग है। क्यों? क्योंकि वह कैकेयी के चित्त के रहस्य को जानती है। वह जानती है कि महारानी यह जो बोल रही हैं, यह अयोध्या का पाठ है, अयोध्या के वातावरण का पाठ है, श्रीराम के व्यवहार का परिणाम है, पर चित्त में जो संस्कार है, वह संस्कार वही मैं और मेरापन है, जिस शब्द की व्याख्या इतने दिनों से चल रही है।

समस्या यह है कि सारे व्यवहार का आधार मैं और मेरापन है। आप जब भी बोलेंगे, तो बोलने में आपको मैं शब्द बोलना ही पड़ेगा। न भी बोलें, तो अब रामजी भोजन करेंगे, ऐसा भी लोग कहते हैं, तो यह भाषा में तो अच्छा लगता है, पर यह कहते हुए अनुभव शायद कम ही लोगों को होता होगा कि रामजी भोजन कर रहे हैं। स्वयं ही वह बेचारा मैं शब्द बचा ले, तो बचा ले। यह बोलने का एक अभ्यास है, पर इस मैं के बिना तो एक शब्द भी नहीं बोल सकते।

और जब मैं है, तो मैं के साथ मेरा तो जुड़ा ही है। मैं हूँ और यह मेरा है। यह मेरा पुत्र है, यह मेरा परिवार है। मैं और मेरापन ही सारा व्यवहार है। सारा संसार ही मैं और मेरापन से चलता है। मैं और मेरेपन से ही सब हो रहा है। अच्छा से अच्छा भी उसी से हो रहा है। आप मैं के उत्थान के लिए कि लोग मेरी प्रशंसा करें, मुझे अच्छा मानें, बहुत बढ़िया काम करते हैं। जिसको आप मेरा मानते हैं, उसकी उन्नति हो, उसके लिये आप कष्ट भी उठा लेते हैं। उसके लिये आप त्याग भी करते हैं। यदि अच्छा काम भी आप करते हैं, तो मैं और मेरेपन के कारण करते हैं। पर उससे अधिक अन्तर भी जो हमारे आपके जीवन में होता है, वह भी मैं और मेरेपन के कारण ही होता है। अब बड़ी समस्या है, मैं और मेरेपन के बिना एक क्षण भी व्यवहार नहीं चल सकता। श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कार्य का भी आप संकल्प लेते हैं। संकल्प में आचार्य बोलते हैं – आप संकल्प लीजिए, आपका नाम क्या है, आपका कुल क्या है, आपका गोत्र क्या है और फिर आप कहते हैं अमुकशर्माऽहम्। आप यज्ञ कर रहे हैं, पूजा कर रहे हैं, तो आपको अहम् का प्रयोग करना ही पड़ता है। व्यवहार में भी आप अपने पुत्र के लिये कष्ट सहते हैं, माँ अपनी सन्तान के लिये कष्ट उठाती है, पिता अपने पुत्र की उन्नति के लिए थोड़ा त्याग करता है, तो यह ममता के कारण ही होता है। इसलिए मैं और मेरापन संसार है। मैं और मेरेपन से सारा व्यवहार है, अच्छे कार्य हैं। पर अयोध्या में यही अच्छा कार्य बुराई के रूप में बदल जाता है। इसी मनोविज्ञान को आप इस पूरे प्रसंग में देखेंगे। इसका तात्पर्य है कि जहाँ आप अपने अहम् को ऊँचा उठाना चाहते हैं, तो अच्छा कार्य कीजिये। पर इसके साथ ही दूसरे लोग भी तो अपने अहम् को ऊँचा उठाने के लिये अच्छे काम करेंगे। तब होड़ लग जाती है कि यह हमसे ऊँचा तो नहीं उठ रहा है? कहीं इसका नाम अधिक तो नहीं हो रहा है और यह भी चेष्टा होने लगती है कि यह ऊँचा उठ रहा है, तो जरा इसे नीचे ढकेल ही दिया जाय। तो अहम् के कारण ही व्यक्ति दूसरों को नीचा दिखाने की भी चेष्टा करता है। दूसरों को यशस्वी देखकर उसको ईर्ष्या हो जाती है, मात्सर्य हो जाता है। मेरेपन में फिर भेद-बुद्धि प्रबल हो जाती है। आप अपने पुत्र के लिये, पुत्री के लिये सबकुछ कर रहे हैं, लेकिन दूसरों के लिये आपको करने का उत्साह प्राप्त नहीं होता। बल्कि बच्चे के विषय में चिन्ता रहती है कि आपका बच्चा परीक्षा में किसी से कम अंक न पाए, सर्वाधिक अंक उसे मिले। आपका बच्चा प्रथम स्थान पर रहे। दूसरे के बच्चे चाहे अच्छे नम्बर पाएँ, चाहे फेल हो जायँ, उसकी कोई चिन्ता नहीं। तो मानो मैं और ममता का ही खेल दिखता है। आगे चलकर बड़े से बड़े महापुरुष कहे जानेवालों, रामचरित मानस में विभिन्न पात्रों के माध्यम से इस ओर संकेत किया गया है कि ऐसे सर्वत्यागी महात्मा और महापुरुष सब कुछ छोड़ने के बाद भी अन्त में अहंता और ममता में अटक जाते हैं। इसका अभिप्राय है कि अहंता और ममता को, मैं और मेरा को छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है। यह बाहर से कभी न भी दिखायी दे, तो गहाराई में होती है। यही वह चित्त का संस्कार था, जो कैकेयीजी में छिपा हुआ था। लगता यही था कि मैं नहीं है, तो मेरा का प्रश्न ही कहाँ था। कैकेयीजी को इतना सम्मान प्राप्त था, अगर कोई होड़ करनेवाला होता, अगर कौशल्या जी कहती कि मैं तो महामहिषी हूँ, मैं बड़ी रानी हूँ, तुम छोटी

हो, तो अहंकार पर चोट लगती। और यदि श्रीराम के बारे में ऐसा लगता कि वे अपनी माँ को अधिक चाहते हैं, तो ममता सामने आती कि नहीं मेरा पुत्र तो भरत है। लेकिन अयोध्या के सारे वातावरण में कौशल्या जी तो कैकेयी जी का इतना ध्यान रखती हैं, जिसकी कोई सीमा नहीं है। प्रभु रामचन्द्र का तो कहना ही क्या है। उनका तो शील ऐसा है, स्वभाव ऐसा है कि वे तो निरन्तर कैकेयी जी की प्रसन्नता के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। इसका अभिप्राय है कि जो मैं और ममता दिखाई नहीं दे रही थी, वह इसी तरह कि जैसे पेट भर भोजन कर के बैठे हों और कहें कि मैं भोजन से नि:स्पृह हूँ। आपका तो पेट भरा हुआ है, इसलिये आप भोजन से नि:स्पृह हो गये।

जब परिस्थिति नहीं है, तो आपकी क्या परीक्षा? बस, यही मन्थरा की विजय है। मन्थरा जानती है कि अयोध्या के वातावरण में भले ही मैं और मेरापन दब गया है, लेकिन वह तो है ही। वह उनके पिता जी से परिचित थी। कैकेयी के पिता ने ही उसको भेजा है। उन्होंने मैं और मेरेपन को लेकर ही भेजा है। महाराज दशरथ ने कैकेयी की सुन्दरता की प्रशंसा सुनी। उनके जीवन में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण था। अब यों कह सकते हैं कि सुन्दरता के प्रति आकर्षण तो दशानन में भी है और दशरथ में भी है, पर दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। दशानन जब सुन लेता था कि यहाँ पर सुन्दरता है, तो –

देव जच्छ गंधर्व नर किंनर नाग कुमारि ।
जीति बरीं निज बाहु बल बहु सुंदर बर नारि ।।
१८२/ख

दशानन आज्ञा दे देता है, बलात् कन्या का हरण कर लेता है, बलपूर्वक अपनी इच्छा पूरी करता है। किन्तु महाराज दशरथ में सौन्दर्य के प्रति आकर्षण की कमजोरी होते हुए भी वे ऐसा दुर्व्यवहार किसी के साथ नहीं करते। यह उनकी विशेषता है। इसलिए उन्होंने विवाह का अनुरोध और प्रस्ताव महाराज कैकेय के पास भेजा। कैकेय नरेश तो मैं और मेरापन के साक्षात् रूप थे। उन्होंने सोचा, कन्या तो समर्पण है, दान है। लेकिन महाराज दशरथ के साथ अपनी कन्या का विवाह मैं करूँ, तो उनकी तो बहुत सी रानियाँ हैं, मेरी बेटी भी उनमें से एक हो जायेगी। तब उन्होंने एक शर्त रखी, जो मैं और मेरेपन का स्वभाव है। उन्होंने कहा – महाराज, मैं अपनी कन्या तो आपको दूँगा, लेकिन आपको यह वचन देना होगा कि मेरी कन्या के गर्भ से जिस पुत्र का जन्म होगा, वही अयोध्या के राज्यसिंहासन पर बैठेगा। वही मैं और मेरापन भाव यहाँ है। भले ही सूर्यवंश में ज्येष्ठ पुत्र को राज्य मिलता हो, नियम होगा, परम्परा होगी, पर आप मेरी कन्या से विवाह करना चाहते हैं, तो वचन दीजिए। यही है स्वभाव। मैं और ममता से जो ग्रस्त व्यक्ति होता है, उसे न संसार की, न लोक की, न मर्यादा की, उसको केवल अपने अहम् की चिन्ता होती है, मेरेपन की चिन्ता होती है। महाराज दशरथ की कमी सामने आई। उन्होंने अपने को एक भुलावा दिया। अच्छा व्यक्ति भी एक बार अपने को भुलावा दे देता है और भुलावा देकर वह मान लेता है कि कोई समस्या नहीं आयेगी। उन्होंने सोचा कि कौशल्या जी को तो अभी तक गर्भ हुआ नहीं। अब तो उनसे संतान की आशा है नहीं। कैकेयीजी से जो पुत्र होगा, वही ज्येष्ठ होगा, तो क्यों न वचन दे दूँ। मानो इस प्रश्न को बड़ा सरल सा मानकर उन्होंने वचन दे दिया। यह जो मैं और मेरापन है, इसी से कैकेयी का जन्म हुआ है। महाराज कैकेय तो बड़े शंकालु भी हैं। जो स्वार्थी व्यक्ति होता है, उसको लगने लगता है कि सामने वाला कहीं ठग तो नहीं लेगा, धोखा तो नहीं दे देगा। चिन्ता हो गई कि यहाँ तो इन्होंने वचन दे दिया विवाह के लिये और अयोध्या में जायँ और वहाँ पर कुल की परम्परा, सूर्यवंश के नियम और उसकी दुहाई देकर कहीं ऐसा न हो कि वे भूल जायें या वचन को नकार दें, तो उन्हें लगा कि हमारी बेटी को सम्भालने के लिये कोई चाहिए। उनको लगा कि मेरे नगर में अगर सबसे बुद्धिमती नारी है, तो वह मन्थरा है। मन्थरा अगर साथ में रहेगी, तो किसी भी प्रकार की गड़बड़ी होगी, तो वह रोकेगी। मन्थरा तो भेद-बुद्धि है ही। रा और म ये दो अक्षर हैं। और रा और म को **'ब्रह्मजीव इव सहज संधाती।'** कहा गया है। मन्थरा में तो दोनों है। पर मन्थरा में रा और म के बीच में दूरी है। नकार और थकार से युक्त एक अक्षर जुड़ा हुआ है। मन्थरा आप लिखेंगे, तो उसमें म भी है और रा भी है। किन्तु उलटा है। म पहले है और रा बाद में है। पर मध्य में वह जो थकार है, उसमें भी नकार जुड़ा है। दकार और नकार का अर्थ तो आप जानते ही हैं। दकार माने देना।

शेष भाग पृष्ठ २११ पर

सदा विद्यमान मित्र, दार्शनिक और गुरु स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज

स्वामी गौतमानन्द जी महाराज

महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ, हावड़ा

अनुवादक – स्वामी ब्रह्मेशानन्द, वाराणसी

(गतांक से आगे)

जब मैं प्रशिक्षण केन्द्र, बेलूड़ मठ में था, तब वे नागपुर से बेलूड़ मठ आये। तब उनमें पीठ के दर्द का प्रारम्भ हो चुका था, जो उनके साथ अन्त तक बना रहा। एक दिन उन्होंने अपने सचिव सोमनाथ महाराज (स्वामी संज्ञानन्द) से कहा – ''मैंने अपने सूक्ष्म शरीर पर काले दाग देखे हैं। अब ये सूक्ष्म शरीर पीठ के दर्द के रूप में व्यक्त हुए हैं। ऐसा सदा होता है – सूक्ष्म शरीर से स्थूल शरीर तक।'' मैं नहीं जानता कि सोमनाथ महाराज ने क्या समझा, पर मैं उसको नहीं समझ सका। स्वामीजी ने उस बात को दो-तीन बार कहा। मुझे ऐसे आध्यात्मिक सत्यों के बारे में अनभिज्ञ होने के लिए दुख हुआ।

सन् १९६१ या १९६२ में स्वामीजी के बेलूड़ मठ में रहते समय मुझे उनकी सेवा करने का सौभाग्य हुआ था। एक बार उन्होंने मुझे दोपहर के विश्राम के बाद २.३० बजे मिलने को कहा। जब मैं उनके कमरे में गया, तब वे बिस्तर पर लेटे हुए थे और छत की ओर देख रहे थे। वे अपनी पहली अंगुली से इशारा कर रहे थे, जो व्यापकता का संकेत था। मैंने जब उसके बारे में पूछा, तो उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा – ''वह आत्मा और परमात्मा के एकत्व का भाव था।''

प्रतिदिन रात को सोने के पूर्व वे मुझसे बंगाली श्रीरामकृष्णकथामृत से कुछ पढ़ने को कहते थे। एक रात्रि को जब मैंने यह पढ़ा, ''जिसके चैतन्य ने सभी प्राणियों को चैतन्य कर दिया है।'' तब वे बोले, ''ओह! ऐसा ही है। आज रात को हम यहीं रूकें।'' अगली रात जब मैंने पुस्तक खोली, तो उन्होंने कहा, ''हम 'जिसके चैतन्य ने सभी प्राणियों को चैतन्य कर दिया है' से ही प्रारम्भ करेंगे न!'' अवश्य ही वे इसी विषय पर पिछले चौबीस घंटों तक ध्यान-चिन्तन करते रहे होंगे। ऐसा था उनका आत्म-परमात्म ध्यान के प्रति वास्तविक प्रेम।

वे कहते थे कि प्रत्येक को इस विषय पर ध्यान करना चाहिए। इससे हम देह और मन से भिन्न आत्मा हैं, इसका आसानी से अनुभव कर सकेंगे।

हमने सुना था कि स्वामी शिवानन्द जी की यह मान्यता थी कि स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने जप की सहायता से उच्चतम शान्ति प्राप्त की है। पीठ की तीव्र वेदना के बावजूद स्वामीजी (जब वे बेलूड़ मठ में १९६२ में थे) जप करने के लिए अर्धरात्रि के १२:०० बजे अपने बिस्तर पर बैठते थे। मैंने उस समय उनके चेहरे को आनन्द से ओतप्रोत देखा है। वे हम लोगों को भी नियमित प्रात: और सायंकाल के जप के अतिरिक्त अर्धरात्रि को जप करने को कहते थे।

मैंने पढ़ा था कि जप करते समय हमें उत्तर या पूर्व की ओर मुँह रखकर बैठना चाहिए। मैंने जब स्वामीजी से इसके बारे में पूछा, तो उन्होंने अपने बिस्तर को दिखाते हुए कहा : ''मैं इस पर कभी इस दिशा में तो कभी उस दिशा में – जैसा मुझे ठीक लगता है, चेहरा करके बैठकर जप करता हूँ।'' ये शब्द उनके थे, जो स्वयं जप सिद्ध थे। उन्होंने मेरे संशय को तत्काल सदा के लिए दूर कर दिया।

कभी-कभी वे रहस्यमय ढंग से बात करते थे। एक बार वे एक बहुत छोटे कमरे में थे, जिसमें केवल दो लोग जितना स्थान था। मैं उनकी कुछ सेवा कर रहा था। जब एक अन्य स्वामी ने अन्दर आना चाहा, तो उन्होंने कहा – नहीं। कमरे में (हदय में) एक के अतिरिक्त, (एक भगवान के अतिरिक्त) अन्य किसी के लिये स्थान नहीं है।''

एक सेवक एक कई परतों वाली पार्सल को खोल रहा था और बीच-बीच में स्वामीजी से पूछता जा रहा था; ''क्या इस परत को भी खोल दूँ?'' स्वामीजी ने उससे कहा ''खोलो, खोलो, सब कुछ खोल डालो, सब कुछ खोल दो। (पूरी तरह दोष रहित हो जाओ)।

अपना प्रेम और दूसरों की गुणवत्ता को प्रकट करने की उनकी एक रोचक प्रणाली थी। उनके जूतों को पॉलिश करना मेरा परम सौभाग्य था। एक दिन मैं अपने बायें हाथ से यह कार्य तेजी से कर रहा था, तब वे मुस्कुराते हुए बोले, '' यह अपने पूर्व जन्म में जूते पालिश करने वाला रहा होगा।'' मैंने कहा, ''मुझे राहत मिली स्वामीजी कि मैं पिछले जन्म में कम से कम एक मानव तो था, उससे नीचे नहीं।'' हम लोग इस पर खूब हँसे।

वे शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिक और आध्यात्मिक सर्वांगीण विकास में विश्वास करते थे। मैंने उन्हें शारीरिक व्यायाम नियमित रूप से तथा ठीक एक ही समय पर जप करते देखा है।

वे स्वस्थ लोगों को शारीरिक मालिश करवाना पसन्द नहीं करते थे। वे इसे 'बुरी आदत' कहते थे, क्योंकि इससे व्यक्ति दूसरे पर निर्भर हो जाता है। एक बार जब उन्हें जुकाम हो गया था, तो मुझे उनके पैरों को गरम नमक के पानी में डुबोकर धोना था। मैंने पानी कितना गरम है, देखने के लिए पानी में हाथ डाला। ऐसा करते समय मेरा हाथ उनके चरण से छू गया। उन्होंने तत्काल मेरी ओर देखते हुए कहा, ''अरे, तुम क्या कर रहे हो?'' वे समझे थे कि मैं शायद उनके चरणों की मालिश करना चाहता था।

एक बार एक ब्रह्मचारी ने उनके चरणों का मालिश करना चाहा, तो उन्होंने कहा, ''जाओ और अपने ब्रह्मचारी भाइयों की चरण-सेवा करो।' यह हम लोगों के लिए एक बड़ी शिक्षा है कि हम आराम-तलमी की आदतें न बनायें।

सन् १९६१-६२ में बेलूड़ मठ में उनकी सेवा करने के बाद मैं दिल्ली केन्द्र लौट आया। जब मैंने सुना कि स्वामीजी का पीठ के दर्द के लिये इलाज हो रहा है, तो मैंने सोचा कि मुझे उनके पास जाकर उनकी सेवा करनी चाहिए। मैंने उन्हें पत्र लिखा और निवेदन किया कि वे मुझे सेवक के रूप में स्वीकार करें, जिससे मैं पहले की तरह उनकी सेवा कर सकूँ। उनका उत्तर हृदयस्पर्शी तथा दिव्यता और विनम्रता से पूर्ण था। ''मुझे 'सेवक' शब्द पसन्द नहीं है। हम सब केवल गुरु महाराज के ही 'सेवक हैं।''

वे इतने वरिष्ठ थे, फिर भी वे कनिष्ठों के साथ बातचीत करते समय उन्हें खड़े नहीं रखते थे। वे सदा उनसे वार्तालाप प्रारम्भ करने के पूर्व आगन्तुक को बैठने को कहते थे। वे सबके साथ अत्यन्त सज्जनता का व्यवहार करते थे।

जब उन्हें पीठ में दर्द हुआ, तो उनके सचिव ने उनसे विदेशी पद्धति का शौचालय बनाकर उपयोग करने का सुझाव दिया, क्योंकि भारतीय पद्धति सुविधाजनक नहीं था। पर वे सहमत नहीं हुए और भारतीय पद्धति का ही उपयोग करते रहे। अन्त में उनका सचिव उन पर यह कहकर हावी हुआ कि मैं उस बने हुए शौचालय को स्वयं साफ करूँगा। उन्होंने तत्काल पूछा, तुम्हें इस कार्य का अनुभव है क्या? मैंने कहा, ''स्वामीजी मैंने गाँवों में सार्वजनिक खोदे गये शौचालयों को साफ किया है, जब मैं कॉलेज के विद्यार्थी के रूप में समाज सेवक था।' वे इससे बहुत प्रसन्न हुए और हँसी के साथ मेरी सेवा स्वीकार करते हुए बोले, ''तब तो मैं निर्लज्ज होकर नये शौचालय का उपयोग करूँगा।'' इस प्रकार मैं अपने गुरु की सेवा कर धन्य हुआ था। रात को अन्तिम बार टॉयलेट (शौचालय) साफ करके उनसे विदा लेते समय सदा उनकी कृपापूर्ण दृष्टि, दयापूर्ण कृपा को मैं याद रखता था।

वे सम्भवत: आश्रमों में सामान्यत: होनेवाले भण्डारों

के विरोधी थे। उस समय साधु प्राय: अधिक खा लेते हैं। वे कहते थे, ''ब्रह्मचर्य द्वारा जो राशि संचित होती है, वह अधिक खाने में नष्ट हो जाती है।'' एक दिन मेरे कई ब्रह्मचारी भाई बेलूड़ मठ से निकट के एक आश्रम में भण्डारा खाने गये। मैं स्वामीजी की सेवा में रत था, अत: नहीं गया। जब ब्रह्मचारी लौटे, तो स्वामीजी के सचिव ने उन्हें कहा कि मैं भण्डारे में नहीं जा सका था। उन्होंने तत्काल उत्तर दिया, उसने भण्डारे में न जाकर क्या खोया है?'' मुझे न जाने से प्रसन्नता ही हुई।

एक बार निकटवर्ती सारदापीठ में चैतन्य लीला का नाटक था। बेलूड़ मठ से बहुत साधु उसे देखने गये थे। अपने कार्य से थोड़ा अवकाश पाकर मैं भी नाटक देखने गया। लौटने पर स्वामीजी की सेवा करते-करते मैंने उन्हें कहा कि मैं उसे देखने गया था। हमारे कई संन्यासी उसे देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए थे। उन्होंने कहा, ''यदि मुझे ध्यान के लिए समय मिल जाए, तो मुझे और किसी मनोरंजन की आवश्यकता नहीं है।''

स्वामीजी सदा कहते थे कि साधना चित्तशुद्धि रूपी फल प्रदान करती है, जिससे सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति होती है। हमें सदा साधना में दृढ़ निष्ठावान रहने की प्रेरणा देते थे। प्रारम्भिक साधकों को वे यह कहकर प्रेरित करते थे – ''तुमने थोड़ा अनुभव किया है। समय आने पर गुरु महाराज तुम्हें इतना देंगे, जिसका तुम स्वप्न भी नहीं देखते, जिसकी तुम्हें कल्पना भी नहीं है।''

वे अपने युवा शिष्यों को कई प्रकार से प्रेरित करते थे। तपस्या में रुचि रखनेवाले को वे तपस्वी कहते थे, तो किसी के प्रेमी स्वभाव की प्रशंसा करते थे। मैंने देखा है कि उनका आकलन सदा सत्य सिद्ध होता था।

जो बात उन्हें अप्रसन्न करती थी, वह थी स्वार्थपरता। वे कहते थे कि गृहस्थों की स्वार्थपरता की सीमाएँ होती हैं, पर एक साधु की स्वार्थपरता असीम हो सकती है। वे सदा नि:स्वार्थ गृहस्थों की प्रशंसा करते थे।

उनसे १९६१-६२ में दीक्षित होनेवाली एक महिला को घुटनों में बहुत दर्द होता था, जिसके कारण वह ध्यान के लिये पालथी मार कर नीचे नहीं बैठ पाती थी। वह यह भी निश्चय नहीं कर पाती थी कि कुर्सी या पलंग पर बैठकर ध्यान करना उचित है या नहीं। वह स्वामीजी से इसके बारे में पूछना चाहती थी। उस समय वे बेलूड़ मठ में कठिन रोग से ग्रस्त थे। वह महिला उनसे मिलने गयी। लेकिन उनके सेवकों ने कहा कि उनकी बीमारी के कारण आगन्तुकों को उनसे मिलने की अनुमति नहीं है। लेकिन उन्होंने उसे सन्ध्या के समय गंगा के किनारे टहलते हुए दूर से देखने की अनुमति दी। जब वह स्वामीजी से लगभग दस या पन्द्रह गज दूर थी, तब स्वामीजी ने उसकी ओर मुड़कर कहा – ''यदि किसी को पालथी मार कर बैठने में असुविधा हो, तो वह पुरुष हो या स्त्री, कुर्सी या पलंग पर बैठकर ध्यान कर सकता है।'' वह महिला आश्चर्यचकित और आनन्दित हो गयी।

उनका सब महिलाओं के प्रति महान आदर का भाव था, और वे उन्हें साक्षात् माँ सारदा ही देखते थे। उन्होंने कई महिलाओं को कहा भी था – ''मैं तुम सभी में माँ सारदा को देखता हूँ।'' एक बार प्रसिद्ध सन्त-महिला आनन्दमयी माँ बैंगलुरु आयीं। हमारे आश्रम के कुछ ब्रह्मचारी उनका दर्शन करना तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहते थे। स्वामीजी ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की, बल्कि कहा, ''तुम माँ सारदा की सन्तानें हो, जाओ और उनके दर्शन कर लो।''

एक बार बेलूड़ मठ में एक ब्रह्मचारी अपने घर पर होने वाले श्राद्ध में सम्मिलित होना चाहता था। स्वामीजी ने उसे परामर्श दिया – 'घर जाने के बदले यहीं कुछ अधिक जप कर लो और उसके फल को श्रीरामकृष्ण के चरणों में अर्पित कर दो।' उनका विश्वास था कि क्रिया-अनुष्ठानों से प्राप्त फल निष्ठापूर्वक किये गये जप और प्रार्थना से प्राप्त किया जा सकता है।

एक बार स्वामी यतीश्वरानन्द जी की एक छोटी बहन जिससे उनकी कई दशकों से भेंट नहीं हुई थी, उनसे मिलने बेलूड़ मठ आई। लेकिन वह उनका संन्यास नाम नहीं जानती थीं। वह उनके पूर्वाश्रम के नाम (सुरेश) से उनके बारे में लोगों से पूछने लगी। कोई उसका आशय समझ नहीं पाया। अन्त में वह श्रीरामकृष्ण के मन्दिर में गई और उसने प्रार्थना की ''ठाकुर, कृपया मुझे बड़े भाई को दिखा दीजिए।'' ठीक इसी समय स्वामी यतीश्वरानन्द श्रीरामकृष्ण को प्रात:कालीन प्रणाम करने के लिए वहाँ आये। उन्होंने अपनी बहन को बाहर खड़े देखा और तत्काल बाहर आकर उसका अभिवादन किया। बाद में उन्होंने मुझे कहा, ''देखो, उसने ठाकुर से अपने भाई को दिखाने की प्रार्थना की और

ठाकुर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।''

मैं अपने संस्मरणों का उपसंहार एक घटना से करता हूँ, जो स्वामीजी की महानता को व्यक्त करती है। सन् १९५७ में ऊटी केन्द्र के अध्यक्ष स्वामी ओजसानन्द की हार्ट अटेक, हृदय-गति रुकने से मृत्यु हो गयी। शव-दाह के अवसर पर उपस्थित होनेवाले संन्यासियों में स्वामीजी भी एक थे। सब कुछ समाप्त होने तक सन्ध्या हो गयी थी। जब मैंने स्वामीजी से यह पूछा, ''महाराज हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है?'' वे एक अन्तर्मुखी स्थिति में थे। क्षणभर का विलम्ब किये बिना ही वे बोले – हमारे जीवन का लक्ष्य अनन्त प्रेम और आनन्द-स्वरूप का, हमारी आत्माओं की आत्मा, समस्त प्राणियों की आत्मा, के रूप में साक्षात्कार करना तथा सब प्राणियों में उनकी सेवा करना है।'' उन्होंने आगे कहा – ''हम जानते हैं कि समाधि क्या है और हम उसमें कुछ समय के लिये लीन हो सकते हैं। लेकिन श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्यों ने उसे हमारे सम्मुख लक्ष्य नहीं रखा था। वे चाहते थे कि हम उनकी (परमात्मा की) सेवा सभी प्राणियों में करें। देखते नहीं कि इसके अतिरिक्त हम अन्य कुछ नहीं कर रहे हैं?'' वे रुके और शान्त हो गये। मैं उनके शब्दों का ध्यान करते हुए शान्ति से वहाँ से चला गया।

मैं अभी भी बैंगलुरु आश्रम में उनकी अवस्थिति और प्रभाव का अनुभव करता हूँ। उनमें संन्यासियों या गृहस्थों, स्त्री अथवा पुरुषों, वृद्ध तथा युवकों, सभी के प्रति असीम तथा अबाध प्रेम था। वे अवैयक्तिक रूप के व्यक्ति थे। अत: उन्होंने किसी को भी अपने दैहिक रूप के बन्धन में नहीं डाला। लेकिन उनका सभी के प्रति एक गहरा और स्थायी सम्बन्ध था। इसके विचार से ही हमारा मन उदात्त हो जाता है।

उनके प्रकाशयुक्त शान्त चेहरे पर सदा विद्यमान आनन्दपूर्ण मुस्कान एक वास्तविक आध्यात्मिक जीवन जीने के फलस्वरूप प्राप्त आनन्द का संकेत था। उनकी महानता के सौवे अंश का भी यदि हम उस समय अंकन कर पाते, तो हम उनसे कहीं अधिक आध्यात्मिक धन प्राप्त कर लेते। उनकी अवतरित कृपा ने हमारे जीवन को इतना धन्य कर दिया है।

परमकृपामय गुरु को प्रणाम!

उनकी कृपा हम सभी पर सदा बनी रहे और हमें श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामीजी के चरणों तक ले जाये, यही मेरी आन्तरिक प्रार्थना है। ❍❍❍ **(समाप्त)**

पृष्ठ २०७ का शेष भाग

ब्रह्मा ने जो एक अक्षर का उपदेश दिया, उसमें उन्होंने कहा केवल 'द'। उसमें देवताओं के लिये दमन का संदेश तथा असुरों के लिए दया का सन्देश था। पर मनुष्यों के लिये दान का संदेश था। तो 'द' माने दान, दान की बड़ी महिमा है। न का अर्थ क्या है? देखिए संसार में अर्थ का कितना महत्त्व है। अर्थ के बिना तो व्यक्ति एक क्षण भी नहीं रह सकता। हर समय सारा व्यवहार चलाने के लिये अर्थ उपयोगी है। लेकिन आपने एक शब्द और सुना है, किसी ने कहा, इसने बड़ा अनर्थ किया, तो अनर्थ कैसे बना। अर्थ में बीच में न घुस गया, तो अनर्थ बन गया। अनर्थ आप लिखेंगे, तो बीच बिना 'न' डाले कैसे लिखेंगे। इसका अर्थ है कि अर्थ अगर देते रहिये तो कल्याणकारी है और अगर अर्थ के बीच में 'न' डाल दीजिए कि नहीं, नहीं, मुझे नहीं देना है, तो यह निषेध है। **(क्रमशः)**

जिज्ञासु बालक

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, उनकी कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

नन्हे बन्दर ने दूर से ही अपनी जीभ बाहर निकाल ली। ''रुको, जब तक मैं तुम्हें पकड़ नहीं लेता,'' नरेन आँगन के चारों ओर उसका पीछा करते हुए मुस्कुराया। बैठकखाना का दरवाजा खुला और उसके पिता एक लम्बे, गोरे रंग के व्यक्ति के साथ बाहर निकले। ''जमाल चाचा,'' नरेन खुशी से चिल्लाया और अतिथि की ओर दौड़ा। ''कहाँ थे इतने दिनों से? मैं आपके लिए प्रतीक्षा कर रहा हूँ ! आपको याद है, जब आप पिछली बार यहाँ आए थे, तब आपने मुझे अफगानिस्तान के ऊँटों के बारे में बताया था? अब इसको आज ही बताकर समाप्त कीजिये ...''

जमाल खान ने नरेन के बाल पर हाथ फेरकर सिर को सहलाते हुये कहा, ''किसी दूसरे समय सुना दूँगा, मेरे बच्चे ! ... मुझे कुछ दूसरा आवश्यक काम करना है ... लेकिन,'' और उन्होंने पलक झपकाई। ''मैं तुम्हारे लिए एक छोटा-सा उपहार लाया हूँ ...।'' उन्होंने अपनी थैली से एक बक्सा निकाल कर नरेन को दे दिया। ''ये तुर्की की मिठाइयाँ हैं ... मुझे आशा है कि तुम इन्हें पसन्द करोगे ...''

''धन्यवाद,'' नरेन मुस्कराया। ''क्या मैं अपने बन्दर को कुछ दे सकता हूँ?''

जमाल खान हँसे और विदाई में हाथ लहराते हुए कहा –''तुम उन्हें जिसे चाहो, उसे बाँट सकते हो ...''

नरेन ने डिब्बा खोला। बादाम जड़ित मिठाइयों की कतार चाँदी की कागज में चमक रही थी। बन्दर उसकी धोती को खींचने और चिहचिहाने लगा। ''थोड़ा धैर्य रखो,'' उसने डाँटा। ''देखो, यहाँ हैं मुंशी बाबू ... पहले हमें उन्हें कुछ देना चाहिए।''

''नहीं, नहीं, धन्यवाद,'' कर्मचारी ने दूर जाने का प्रयास किया। ''मैं ऐसा कुछ भी नहीं खा सकता, जिसे

किसी ने छुआ हो, जो मेरी जाति से बाहर का कोई हो। अच्छा होगा कि तुम भी इसे न खाओ ...।''

नरेन तुरन्त एक टुकड़ा खा लिया और अत्यन्त प्रसन्नता से अपनी आँखें बन्द कर लीं। ''यह स्वादिष्ट है ...'' एक खाकर देखो, ...'' ''हरे राम ! क्या कर डाला ! अब तुम अपनी जाति खो चुके हो।''

''मुंशी बाबू ...'' विश्वनाथ दत्त चुपचाप पीछे से बोले।

''कृपया ऐसे विचार मेरे बेटे के मस्तिष्क में मत डालिये।'' ''नरेन, ये सब बातें भूल जाओ। जाओ बाहर खेलो ...''

लेकिन नरेन भूल नहीं पाया। ''मेरी जाति चली गई,'' वह आश्चर्यचकित था। बन्दर को एक मिठाई खिलाकर और अपने मुँह में एक और डालते हुए ''इसका क्या अर्थ हो सकता है?'' एक-एक करके उसके पालतू जानवर इकट्ठे हुए। बकरी, खरगोश, कबूतर, सभी मिठाई का स्वाद लेना चाहते थे। ''क्या तुमलोगों के पास इसका उत्तर है?'' उसने उनलोगों से पूछा और जब कबूतर बैठक-घर के दरवाजे के बाहर झुण्ड में आया, तो उसका चेहरा खिल उठा और

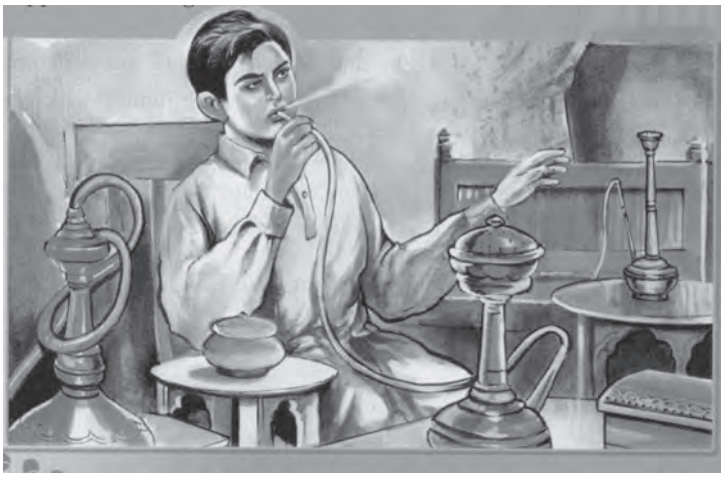

वह अन्दर चला गया।

यह एक बड़ा कमरा था, जिसमें बहुत सारे फर्नीचर थे और कालीन वाले फर्श पर कई हुक्के एक साथ पंक्तिबद्ध रखे हुये थे। ''हर समुदाय के लिए एक,'' उन पर छोटा नाम चिपका हुआ पढ़कर नरेन बड़बड़ाया। उसने पहले ब्राह्मणों के लिए रखे हुए हुक्के को चुना, घुमावदार पाइप को अपने होठों पर लगाया। धुआँ छोड़ते हुए उसने अपने हाथों और पैरों की ओर देखा। ''मैं नहीं बदला हूँ और मैं पहले जैसा ही अनुभव कर रहा हूँ।'' उसके बगल में रखे एक को लेने के लिए वह आगे बढ़ा, एक पीतल का हुक्का था, जिससे ईसाई लोग पीते थे। एक बार फिर उसने पाइप को अपने मुँह से लगाया, जोर से खींचा।

कुछ क्षणों के बाद, उसने सरका दिया। उसने उन सभी हुक्कों से पीकर देखा। अब केवल एक ही हुक्का रह गया। यह मोतियों से जड़ा हुआ एक सुन्दर हुक्का था। उसने जमाल खान और अन्य मुस्लिम पुरुषों को उससे धूम्रपान करते देखा था। अपने गालों को लगाते हुए, उसने जोर से खींचा, खाँसा और थोड़ा-सा थूका।

विश्वनाथ दत्त ने चुपचाप कमरे में प्रवेश कर पूछा, ''नरेन, क्या कर रहे हो?'' एक मुस्कान उनके होठों पर खिल रही थी।

''बाबा, आप जानते हैं कि मुंशी बाबू ने क्या कहा था,'' वह कहने लगा। ''जाति खोने के बारे में ...। मिठाई खाने के बाद मैंने कुछ भी नहीं खोया, इसलिए मैंने इन अलग-अलग हुक्के से पीकर जाँचने की सोची ...''

''और क्या तुमने अभी तक कुछ खोया है?'' विश्वनाथ ने पूछा।

''नहीं बाबा, मुझे कुछ अलग नहीं लगा और हुक्के का स्वाद भी एक जैसा ही है। मुझे समझ में नहीं आता कि हम इतने सारे क्यों रखे हुए हैं। सबके लिए एक हुक्का ही पर्याप्त होना चाहिए ...''

विश्वनाथ दबी हुई हँसी के साथ बोले, ''अच्छा किया मेरा उत्सुक बच्चा ! इस जिज्ञासु मन को जीवित रखो। सत्य को तुम्हारे सामने प्रकट होने में कोई विकल्प नहीं होगा।''

* * *

धर्म में कोई जाति नहीं होती, जाति केवल एक सामाजिक संस्था है। – स्वामी विवेकानन्द

पुरखों की थाती

अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धुः
कामातुराणां न भयं न लज्जा।
विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा,
क्षुधातुराणां न रुचिर्न वेला ।।९००।।

– धन के लोभियों के लिए न तो कोई मित्र होता है, न सम्बन्धी; कामोन्माद से ग्रस्त लोगों के लिये न तो कोई भय होता है, न लज्जा; विद्या के लिये आकुल जन में न सुख की आकांक्षा होती है, न निद्रा की चिन्ता और भूख से पीड़ित लोग न भोजन का स्वाद देखते हैं और न समय।

अहो भार्या अहो पुत्रं अहो आत्मा अहो सुखम्।
अहो माता अहो भ्राता पश्य मायाविमोहितम्।।९०१।।

– अहो ! देखो तो परमेश्वर की माया से मोहित होकर मनुष्य यही कहता रहता है कि यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी माता है, यह मेरा भाई है और कामना करता है कि इन सब से मुझे सुख प्राप्त होगा। (परन्तु वास्तविक जीवन में ऐसा कम ही होता है)

शंकर पूजिते शारदे

डॉ. अन्वय मुखोपाध्याय

सहायक आचार्य मानविकी व सामाजिक विज्ञान विभाग

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, खड़गपुर

शंकराचार्य की शारदा-साधना और श्रीरामकृष्ण भावधारा में श्रीमाँ सारदा

माधवाचार्य द्वारा रचित शंकर दिग्विजय के सातवें सर्ग में जब भगवत्पाद शंकराचार्य महर्षि जैमिनी और बादरायण से उनके व मंडन मिश्र के बीच होनेवाले शास्त्रार्थ का निर्णय करने का अनुरोध करते हैं, तो दोनों ही ऋषि कहते हैं कि निर्णायिका मंडन की बुद्धिमती स्त्री उभय भारती होनी चाहिए, जो स्वयं देवी सरस्वती की अवतार हैं।[१] मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी का नाम सामान्यत: उभय भारती माना जाता है, जबकि माधवीय शंकर दिग्विजय में उनका नाम शारदा बताया गया है – **शारदां नाम समस्तविद्याविशारदाम्**।[२]

जब मण्डन मिश्र आचार्य शंकर से शास्त्रार्थ में पराजित हो जाते हैं, तो उभय भारती या शारदा स्पष्ट शब्दों में अपने पति की पराजय की घोषणा करती हैं। हालाँकि वे शंकर को अपने साथ शास्त्रार्थ में भाग लेने के लिए आमन्त्रित करती हैं। जब वे भी शंकर से शास्त्रार्थ में पराजित हो जाती हैं, तो वे इस लोक को छोड़कर अपने परमधाम, ब्रह्मलोक, लौटने का निश्चय करती हैं। किन्तु शंकर उनसे कहते हैं –

जानामि त्वां देवि देवस्य धातु-
र्भार्यामिष्टामष्टमूर्तेः सगर्भ्याम्।
बाचामाद्यां देवतां विश्व गुप्त्यै-
चिन्मात्रामप्यात्तलक्ष्म्यादिरूपा ।।[३]

शंकराचार्य स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे शारदा/उभय भारती के वास्तविक स्वरूप से परिचित हैं, जो वाणी की परम अधीश्वरी, शिव की बहन और ब्रह्मा की पत्नी हैं, जो चिन्मात्र-स्वरूपा हैं, तथापि वे लक्ष्मी आदि विभिन्न रूपों को धारण करती हैं। पुन: आचार्य उनसे प्रार्थना करते हैं कि वे देवी शारदा के रूप में उनके द्वारा पवित्र स्थानों में स्थापित तीर्थों में निवास करें और सभी पर अपना कृपा-वर्षण करें। वे उनकी प्रार्थना का उत्तर देती हैं और 'तथास्तु' कहकर ब्रह्मलोक प्रस्थान करती हैं।

स्वामी अपूर्वानन्द जी ने अपनी पुस्तक, 'आचार्य शंकर' में लिखा है कि सरस्वती की अवतार उभय भारती ने शंकराचार्य जी से कहा था कि वे अपने दिव्य शरीर के साथ शृंगेरी में स्थापित मठ में निवास करेंगी। उन्होंने यह भी कहा था कि जब शंकर वहाँ पवित्र श्रीयन्त्र स्थापित करेंगे, तो वे उस यन्त्र में अधिष्ठान करेंगी। मध्व के शंकर दिग्विजय में कहा गया है –

या शारदाम्बेत्यभिधां वहन्ती
कृतां प्रतिज्ञां प्रतिपालयन्ती।
अद्यापि शृंगेरिपुरे वसन्ती
प्रद्योततेऽभीष्टवरान् दिशन्ती ।।[४]

अर्थात्, भगवती शारदा शंकराचार्य को दिए अपने वचन का पालन करती हैं और आज भी शृंगेरीपुर में निवास करती हुई अपने भक्तों की मनोकामनाएँ पूर्ण करती हैं।

शृंगेरी पीठ की वेबसाइट के अनुसार शारदाम्बा-मन्दिर का वर्णन इस प्रकार है – "मूलत: एक साधारण मन्दिर था, जिमसें चन्दन की लकड़ी से बनी शारदा देवी की मूर्ति थी, जो श्री आदि शंकराचार्य द्वारा एक चट्टान पर उकेरे गए श्रीचक्र के ऊपर स्थापित थी। बाद में श्री भारती कृष्ण तीर्थ और श्री विद्यारण्य ने केरलीय शैली में काष्ठ व टाइलों वाली छत का एक मन्दिर बनवाया। श्री भारती कृष्ण तीर्थ ने चन्दन काष्ठ की मूर्ति के स्थान पर

वर्तमान स्वर्ण मूर्ति स्थापित की।''

सम्पूर्ण भारत पर शंकराचार्य की बौद्धिक और आध्यात्मिक विजय, कश्मीर स्थित सर्वज्ञपीठ पर आरोहण के साथ अपने अन्तिम चरण में पहुँची। मध्व के शंकर दिग्विजय में आचार्य के कश्मीर स्थित सर्वज्ञपीठ पर आरोहण की घटना का विस्तृत वर्णन है, जहाँ शारदा पीठ पर देवी शारदा विराजमान हैं –

जम्बूद्वीपं शस्यतेऽस्यां पृथिव्यां
तत्राप्येतन्मण्डलं भारताख्यम्।
काश्मीराख्यं मण्डलं तत्र शस्तं
यत्राऽऽस्तेऽसौ शारदा वागधीशाः।।[५]

इस भूतल पर जम्बूद्वीप सबसे श्रेष्ठ है और उस जम्बूद्वीप में भी भारतवर्ष सर्वोत्तम है। उसमें भी काश्मीर-मण्डल सर्व रमणीय है। वहीं पर वाणी की अधीश्वरी 'शारदा देवी' रहती हैं। वहाँ शारदा देवी का मन्दिर है, जिसमें चार दरवाजे और अनेक सुन्दर कलाकृतियाँ हैं। वहीं पर सर्वज्ञ पीठ है। उस पीठ पर आरोहण करने से व्यक्ति समस्त पण्डितों के मध्य में सर्वज्ञ हो जाता है। स्वामी अपूर्वानन्द जी बड़े ही रोचक ढंग से वर्णन करते हुए लिखते हैं कि देवी शारदा या सरस्वती अपनी अलौकिक दिव्य वाणी से शंकराचार्य की सर्वज्ञता को स्वीकार करते हुए प्रसन्नतापूर्वक सर्वज्ञ पीठ पर विराजित होने की अनुमति देती हैं और शंकराचार्य जी भी उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

आचार्य शंकर की जीवनियों से यह स्पष्ट होता है कि महानतम ज्ञानी होने के कारण उनका ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती या शारदा से विशेष सम्बन्ध था तथा शिवावतार होने से उन्हें सरस्वती का भ्राता कहना अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा तथा शंकर ने उनका पूरा सम्मान किया। शृंगेरी पीठ की देवी शारदा की नामावली में ये 'शंकर पूजिते शारदे शर्वसहोदरी शारदे' विशेषण से विभूषित हैं। शंकराचार्य द्वारा पूजित श्रीशारदाम्बा विभिन्न देवियों में से मात्र एक देवी नहीं हैं, अपितु महादेवी हैं, ब्रह्मविद्या सदृश तथा इस प्रकार ब्रह्म से युक्त अर्थात् स्वयं ही ब्रह्म हैं। ऐसी मान्यता है कि शंकराचार्य ने कश्मीर में रहते हुए प्रसिद्ध प्रपंचसार तन्त्र की रचना की थी। देवी शारदा कश्मीर की अधिष्ठात्री देवी हैं। इसीलिए आचार्य ने इस तान्त्रिक ग्रन्थ में परा-तत्त्व शारदा का नाम दिया है। इस ग्रन्थ में वाणी की देवी वागीश्वरी को अज्ञान का नाश करनेवाली परम विद्या के रूप में स्तुति की गई है –

विद्यारूपेऽविद्याविनाशिनि
विद्योतितेऽन्तरात्मविदाम् ।[६]

शृंगेरी पीठ के आचार्यों द्वारा देवी शारदा के श्रीविग्रह की सुन्दर व्याख्या प्राप्त होती है – ''वे अपने चार हाथों में अमृत से भरा एक कलश, अमरता का प्रतीक एक पुस्तक, ज्ञान का प्रतीक एक रूद्राक्ष-माला और अद्वैत-तत्त्व का प्रतीक चिन्मुद्रा धारण करती हैं। इस प्रकार वे ब्रह्मविद्या का प्रतिनिधित्व करती हैं और स्वयं ब्रह्म से अभिन्न मानी जाती हैं। रोचक बात यह है कि उनके हाथों में ये आभूषण, चिर युवा, मौन गुरु, दक्षिणामूर्ति के आभूषणों के समान हैं। देवी शारदा और गुरु दक्षिणामूर्ति, दोनों को कभी-कभी अपने हाथों में वीणा धारण किए हुए भी शास्त्रों में चित्रित किया गया है।'' यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्रीशारदा केवल ब्रह्मविद्या का एक अमूर्त प्रतीक नहीं हैं, वे आदि गुरु, दक्षिणामूर्ति देवता के साथ भी एकाकार हैं। अत: वे गुरु-तत्त्व का साक्षात् स्वरूप हैं, जिसका प्रतिनिधित्व स्वयं भगवत्पाद शंकराचार्य करते हैं। शृंगेरी पीठ की वेबसाइट के वर्णानुसार – ''देवी शारदाम्बा सगुण ब्रह्म जगन्माता, ब्रह्माण्ड की महादेवी तथा जगन्माता का प्रतिनिधित्व करती हैं। वे गुरु-रूपिणी भी हैं, क्योंकि वे जगद्गुरु के माध्यम से भक्तों पर अपना कृपा-वर्षण करती हैं।'' यद्यपि आदि शंकराचार्य मूलत: गुरु-तत्त्व के मूर्त रूप में परब्रह्म की अभिव्यक्ति के रूप में शारदा के साथ एकाकार थे, तथापि उन्होंने समय-समय पर उनकी पूजा की थी। ब्रह्मविद्या और आदि गुरु के रूप में वे ही जीव को ब्रह्म के साथ उसकी एकता का बोध कराती हैं, जैसे केनोपनिषद में देवी उमा हैमवती। अतएव उनकी पूजा अद्वैत मार्ग से विकर्षण नहीं, बल्कि उसका आधार है। शंकर-विलास ग्रन्थ में हम अचार्य शंकर द्वारा देवी शारदा से की गई प्रार्थना पाते हैं, जिनसे वे उनके द्वारा स्थापित अर्चा-विग्रह में स्थायी रूप से निवास करने का अनुरोध करते हैं –

त्वमेव जगतां धात्री सारदे स्व स्वरूपिणि।
तव प्रसादाद्देवेशि मूको वाचालतां व्रजेत ।।...

कृतघ्नां परिहाराय तवार्च्चा स्थापिता मया।
अत्र तिष्ठ महेशानि यावदाहूतसम्प्लवः।।[७]

परब्रह्म के एक अवतार शंकर ने शारदा की आराधना दिव्य ज्ञान की दात्री के रूप में की थी। जैसाकि हम सभी जानते हैं, परब्रह्म के एक अन्य अवतार श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ सारदा की आराधना परम विद्या और शक्ति के स्वरूप के रूप में की थी। स्वामी अब्जजानन्द बताते हैं कि शंकराचार्य के श्रीशारदाम्बा की तरह ही श्रीमाँ सारदा भी सरस्वती की अवतार थीं, इसे ठाकुर ने बार-बार स्मरण कराया है। स्वामी अब्जजानन्द के मतानुसार जिस प्रकार शंकराचार्य ने शृंगेरी और कांची; दोनों में देवी श्रीविद्या को स्थापित किया था, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण ने भी विक्रम संवत् १९२९ (तदनुसार बंगीय १२८०) में फलहारिणी काली पूजा की प्रसिद्ध रात को सारदा मणि देवी में देवी षोडशी (श्रीविद्या ललिता त्रिपुरसुन्दरी) का आह्वान करके अपने भविष्य के संघ में और रामकृष्ण आन्दोलन के केन्द्र में श्रीविद्या की दिव्य ऊर्जा स्थापित की थी। वे हमें कहते हैं कि शंकर ने अपने शिष्यों से कहा था कि देवी शारदा की पूजा अविद्या को दूर करके और आध्यात्मिक ज्ञान की ज्योति जलाकर ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के उनके उद्यम को सुगम बनाएगी। इसी प्रकार ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने अपने लीला-क्षेत्र दक्षिणेश्वर से निकलने वाले आध्यात्मिक ज्ञान के निर्बाध प्रवाह को सुनिश्चित करने के लिये श्रीमाँ के व्यक्तित्व में ज्ञान की महान देवी की दिव्य ऊर्जा का आह्वान और स्थापन किया। जिस प्रकार शंकराचार्य ने गुरुरूपिणी शक्ति के रूप में शृंगेरी में देवी शारदा के शाश्वत कार्य की कल्पना की थी, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण ने भी आधुनिक भारत के लिये मोक्षदायिनी गुरुशक्ति के रूप में श्रीमाँ सारदा की महान भूमिका की कल्पना की थी और इस जीवन्त देवी को अपने द्वारा प्रारम्भ किए गए आध्यात्मिक आन्दोलन के केन्द्र में स्थापित किया था।

स्वामी अब्जजानन्द ने सारदा देवी की स्तुति के लिये शंकर द्वारा रचित सुन्दर स्तोत्र का उल्लेख किया है –

कटाक्षे दयार्द्रां करे ज्ञानमुद्रां
कलाभिर्विनिद्रां कलापैः सुभद्राम् ।
पुरस्त्रीं विनिद्रां पुरस्तुङ्गभद्रां
भजे शारदाम्बामजस्त्रां मदम्बाम् ।।[८]

अब्जजानन्दजी कहते हैं कि शंकराचार्य के स्तोत्र में माँ शारदा का करुणामय स्वरूप हमें श्रीमाँ सारदा के करुणामय स्वरूप और सबके प्रति उनके मातृ-प्रेम की याद दिलाता है। इस सन्दर्भ में 'मदम्बम्' शब्द का विशेष महत्व है। शंकराचार्य देवी शारदा को 'मदम्बा' अर्थात् मेरी माँ कहकर सम्बोधित करते हैं। हम सभी जानते हैं, श्रीमाँ सारदा भी सबकी माँ हैं। भले ही वे विश्वमाता हों, किन्तु हममें से प्रत्येक उन्हें 'मदम्बा' अर्थात् मेरी माँ कह सकता है। कौन नहीं जानता कि श्रीमाँ सारदा का गुरु-स्वरूप हमेशा उनके मातृ-स्वरूप से अभिभूत रहता था?

इस तथ्य का उल्लेख करके इस आलेख को समाप्त करूँगा। श्रीमाँ सारदा ने मायावती अद्वैत आश्रम में स्थित अपने संन्यासी संतान स्वामी विमलानन्द को स्मरण दिलाया था – श्रीरामकृष्ण 'अद्वैत' थे, इसलिए उनके शिष्य भी अद्वैतवादी हैं, जिससे उन्हें यह समझ में आया कि बिना किसी अनुष्ठान के श्रीरामकृष्ण का निराकार ब्रह्म के अद्वैत स्वरूप के रूप में ध्यान करना, रामकृष्ण-साधना का एक पूर्णतः मान्य मार्ग है। स्वामी यतीश्वरानन्द जी का भी ऐसा ही विचार है – रूप से अरूप की ओर, साकार से निराकार की ओर, नाम से उस तक की यात्रा करनी है, जो नाम से परे है, जो ब्रह्म का परम स्वरूप है। वस्तुतः श्रीमाँ सारदा ही थीं, जिन्होंने श्रीरामकृष्ण की साकार उपासना सिखाने के अतिरिक्त अगणित सन्तानों को भी सिखाया कि कैसे अद्वैत मार्ग पर ठाकुर की साधना करें। ब्रह्मविद्या के रूप में वे ठाकुर के सच्चिदानन्द परब्रह्म-स्वरूप में उनसे अभिन्न व एकाकार हैं। जिस प्रकार शृंगेरी में स्थापित देवी शारदा की भक्ति के माध्यम से निराकार ब्रह्म की खोज आवश्यक है, उसी प्रकार श्रीमाँ सारदा, जिन्हें सभी 'मदम्बा' – 'मेरी माँ' कह सकते हैं, उनकी प्रार्थना और अखण्ड भक्ति के द्वारा ठाकुर के दिव्य, परब्रह्म स्वरूप का अन्वेषण भी आवश्यक है। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. श्रीशंकर दिग्विजय – मध्वाचार्य, सर्ग ७, श्लोक ५०-५१ **२.** वही, ७/५८ **३.** वही, १०/७० **४.** वही, १२/६९ **५.** वही १६/५५ **६.** प्रपंचसार तन्त्र ८.५५ **७.** ज्ञान-प्रदीप पृ. ७७-७९ **८.** शारदाभुजंगप्रयाताष्टकम्, श्लोक-२

सहायक ग्रन्थ – १. मध्वाचार्य, श्रीशंकर दिग्विजय, अनुवादक बलदेव उपाध्याय, हरिद्वार – श्रवणनाथ ज्ञान मन्दिर **२.** स्वामी अपूर्वानन्द, आचार्य शंकर, नागपुर, रामकृष्ण मठ **३.** शंकराचार्य, प्रपंचसार तंत्रम्, वाराणसी, चौखम्बा विद्याभवन **४.** स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती, ज्ञान प्रदीप, कलकत्ता, नवभारत **५.** स्वामी अब्जजानन्द, प्रकृतिम परमाम् कलकत्ता, उद्बोधन, स्वामी यतीश्वरानन्द, यागेर कथा, कलकत्ता, उद्बोधन

श्रीरामकृष्ण-गीता (५८)

(द्वादश अध्याय १२/६)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

जीवस्यापीह संसारे घटते इदृशी दशा ।
ईश्वरसाधनार्थं चेद् गत्वा कामयते तथा ।
धनं जनं यशोमानमैहिंक विषयादिकम् ।।६६।।
वाञ्छितं लभते सत्यं किञ्चित् किञ्चिन्न संशयम् ।
तथापि परिणामेऽस्य व्याघ्रभयं च विद्यते ।।६७।।

– इस संसार में जीव की भी ऐसी ही दशा होती है। ईश्वर की साधना करते-करते यदि कोई सांसारिक विषयादि धन, जन, सम्मान, यश इत्यादि की कामना करे, तो वह अपनी इच्छित वस्तु को अवश्य ही प्राप्त करता है, इसमें कोई संशय नहीं है, किन्तु उसे व्याघ्र का भय भी रहता है।

रोगः शोकस्तथा तापो मानोऽपमानमेव च ।
विषयनाशशार्दूल एतेऽत्र सर्व एव हि ।
शार्दूलाल्लक्षकृत्वोऽपि वास्तवात् क्लेशदायकः।।६८।।

– अर्थात् रोग, शोक, मान, अपमान और विषयनाश रूपी व्याघ्र, ये सभी वास्तविक व्याघ्र से लाख गुना पीड़ा-दायक होते हैं।

त्यागभावोदितेऽकस्मात् पुंसो मनसि कस्यचित् ।
भातृबन्धु सकाशं स समागत्य न्यवेदयत् ।।६९।।

– एक व्यक्ति के मन में हठात् वैराग्य-भाव आने पर वह अपने भाइयों-परिजनों से जाकर बोला –

यास्यामि विजनं देशं संसारो मे न रोचते ।
ईश्वराराधनं तत्र सद्य एव करोम्यहम् ।।७०।।

– मुझे संसार अच्छा नहीं लग रहा है। अब मैं किसी निर्जन स्थान में जाकर वहाँ ईश्वर की आराधना करूँगा ।

सम्मतिं ज्ञातिवर्गाश्च संकल्पेऽस्मिन् शुभे ददुः।
ततो गृहाद्विनिष्क्रम्य स्थानं स विजनं गतः।।७१

– उसके परिजनों ने भी इस शुभ संकल्प में अपनी सम्मति दे दी। उसके बाद वह घर से निकलकर एक निर्जन स्थान में चला गया।

तत्र स तप्तमारेभे चातिघोरं तपो महत् ।
दीर्घैर्द्वादशवर्षैस्तु तपस्तप्त्वा निरन्तरम् ।।७२।।
विभूतीः काश्चिदासाद्य गृहं स पुनरागतः।
गते बहुतिथे काले तं दृष्ट्वात्मीयबान्धवाः।।७३।।
कथावार्ताप्रसंगे तं पप्रच्छुर्हृष्टमानसाः।
एतावत्तु तपस्तप्त्वा कीदृग्ज्ञानं त्वमाप्तवान् ।।७४।।

– वहाँ वह घोरतर तपस्या करने लगा। निरन्तर बारह वर्षों तक तपस्या करने के कारण उसे कुछ सिद्धियाँ भी मिल गईं। उसके बाद वह पुनः घर वापस आ गया। उसके स्वजन-परिजन बहुत दिन बाद देखकर बहुत प्रसन्न हुए और वार्तालाप के समय पूछा – ''इतने दिनों तक तपस्या कर तुमने कौन-सा ज्ञान प्राप्त किया?

इषद्धास्यं पुमान् कुर्वन् श्रुत्वेदं वचनं तदा।
दृष्ट्वा गच्छन्तमेकं स मातंगं पुरतस्तथा ।।७५।।
तं गजमुपसंगम्य यावदेतत् वचोऽबवीत् ।
स्पृष्ट्वा गात्रं त्रिकृत्वोऽस्य कुंजर त्वं मृतो भव ।।७६।।

– तब वह व्यक्ति यह बात सुनकर थोड़ा हँसकर वहाँ सम्मुख जा रहे एक हाथी के पास जाकर उसके शरीर का तीन बार स्पर्श कर बोला – 'हाथी तुम मर जाओ।'

सोऽचिरान्मृतवद्भूतः स्पर्शमात्रान्महागजः।
तस्य देहं पुनः स्पृष्ट्वावदत् कियत्परमं पुमान् ।
हस्तिन् स त्वं पुनर्जीव स चापि जीवितोऽभवत् ।।७७।।

– उसके स्पर्श करते ही हाथी तुरन्त मर गया। कुछ देर बाद उसने हाथी को स्पर्श कर कहा – हाथी तुम पुनः जीवित हो जाओ। हाथी तत्काल जीवित हो गया।

गत्वा स तटिनीतीरं गृहस्याऽग्रे ततः पुमान् ।
पारं चैवाचिरात्तस्याः पद्भ्यां मन्त्रबलाद्गतः ।।७८।।

– उसके बाद वह घर के सामने नदी तट पर जाकर मन्त्र-बल से पैदल ही नदी को पार कर गया।

पुनस्तीरान्तरात् सद्यस्तथा प्रत्याऽगतोऽभवत् ।
दृष्ट्वेमान् भ्रातरः सर्वे यद्यपि विस्मयं गताः।।७९।।
तथापि ते इदं वाक्यं पप्रच्छुस्तं तपस्विनम् ।
एतावन्तं त्वया कालं तप्तं भ्रातस्तपो वृथा।।८०।।

– पुनः उसी प्रकार नदी को पार कर वह इस पार चला आया। यह सब देखकर के भाई सब बहुत अश्चर्यकित तो हुए, किन्तु उन सबने अपने तपस्वी भाई को कहा – ''भैया! आपने इतने दिनों तक व्यर्थ ही तपस्या की।'' **(क्रमशः)**

भगवान शंकराचार्य चालीसा

पं. गिरिमोहन गुरु 'नगर श्री'

नर्मदापुरम्, मध्यप्रदेश

जय जय शिव गुरु के सुवन, जय जय शिव अवतार।
जय शंकर जय जगद गुरु, बिनवऊँ बारम्बार।।

जय जय मातु विशिष्टा । धर्म सनातन के रखवारे ।।
जय जय ग्राम कालटी वासी । जय जय केरल प्रान्त निवासी।।
नम्बूद्री ब्राह्मण गृह आये । सभी अलौकिक कार्य सुहाये।।
चहुँ दिशि थे अधर्म के बादल। वैदिक धर्म दिनों दिन निर्बल।।
क्षात्र धर्म थे राजा भूले । भौतिक दम्भ रहे नित फूले ।।
छोड़ा सभी सनातन धर्मा । विविध पन्थ चहुँ ओर अधर्मा।।
वाम मार्ग सर ऊँचा कीन्हा । शाश्वत धर्म क्षीण कर दीन्हा।।
भक्तों की सुन आर्त्त पुकारा ।हरने हेतु भूमि भय भारा ।।
तज कैलाश स्वयं शिव आये । कई देव भी संग में लाये ।।
ब्रम्हा बने मिश्र जी मंडन । हुये विष्णु भगवान सुनन्दन ।।
भट्ट कुमारिल स्वामि कार्तिक । इन्द्र सुधन्वा ले धनु सायक।।
पवन देव तोटक बन आये । यम भी हस्तामलक कहाये ।।
शिव की करने हेतु आरती । हुई शारदा उभय भारती ।।
केरल प्रान्त कालटी ग्रामा। विप्र बसें तँह शिवगुरु नामा।।
परम शैव शिव भक्ति दृढ़ाई । बृद्ध हुये संतति न पाई ।।
पहुँच त्रिचूर कीन्ह शिव सेवा । हुये प्रसन्न वृषाचल देवा ।।
वृषाचलेश्वर सपना दीन्हा । शिव गुरु हृदय मनोरथ चीन्हा।।
पंचम तिथि महिना वैशाखा । आलोकि उजियारा पाखा ।।
ईसा पूर्व पाँच सौ सप्तम् । परम पुनीत सदी शुभ अष्टम् ।।
शिव गुरु गेह हुआ उजियारा । शंकर स्वयं लिया अवतारा।।
शिशुपन से ही कार्य अलौकिक । शंकर भला रहे कब लौकिक।।
उम्र वर्ष थी केवल अष्टम् । चारों वेद किये हृदयंगम् ।।
षोडश वर्ष उम्र जब पाई । लिखे भाष्य महिमा अधिकाई।।
यदपि जन्म से ही संन्यासी । किन्तु मातृभक्ति उर खासी।।
पैदल ओंकारेश्वर आये । रेवा-तट गुरु दर्शन पाये ।।
शास्त्रार्थ में हारे मण्डन । कर न सके शंकर मत खण्डन।।
मंडन ही आचार्य सुरेश्वर । प्रथम पीठ के हुये अधीश्वर ।।
ब्रह्मसूत्र उपनिषद सुगीता। भाष्य लिखे सारा जग जीता ।।
वैदिक धर्म ध्वजा फहराई । जगदगुरु की पदवी पाई।।
यद्यपि यति अद्वैत प्रचारक । भौतिक दृष्टि किन्तु आराधक ।।
पंच देव पूजन परिपाटी । जग कल्याण हेतु उद्घाटी।।

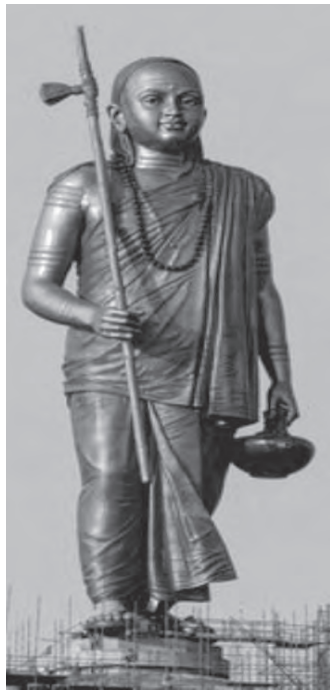

सूर्य गणेश विष्णु शिव शक्ती। सभी उपास्य सभी की भक्ति।।
शैव वैष्णव भेद मिटाया । सहज समन्वय भाव जगाया।।
कीन्हा ऐसा धर्म प्रचारा । चारों दिशि थापित मठ चारा ।।
ज्योति शारदा अरु गोबरधन । शृंगेरी मठ चार सुहावन।।
तोटक हस्तामलक सुरेश्वर । पृथ्वीधर भये पीठाधीश्वर।।
तीर्थाश्रम गिरि पर्वत सागर । वनारण्य सरस्वती उजागर।।
पुरी भारती ये दश नामा । दस प्रशिष्य कीन्हें गुण धामा।।
चारों पीठ आज भी जाग्रत । संतत वैदिक धर्म प्रसारित ।।
जगदगुरु यतिवर दशनामी । गुरु के लो प्रणाम गोस्वामी।।

आनन्द गिरि निज ग्रन्थ में गाई कथा महान ।
गिरिमोहन गुरु भी किया मति अनुसार बखान ।।

जैसे सिर पर का बोझा, किसी दूसरे द्वारा दूर किया जा सकता है, परन्तु भूख सदृश बातों का कष्ट तो स्वयं को ही दूर करना होता है, किसी अन्य द्वारा नहीं। रोगी जो ओषधि या पथ्य स्वयं लेता है, उसी से वह स्वस्थ होता है, न कि उसके बदले में अन्य लोगों द्वारा किये गये कर्मों से।

अविद्या, काम, कर्म आदि द्वारा उत्पन्न बन्धनों से स्वयं अपने को छोड़कर और कौन छुटकारा दिला सकता है, चाहे करोड़ों जन्म-मरण के चक्कर क्यों न हों?

– आद्य शंकराचार्य

नैतिक या मनोवैज्ञानिक भ्रम

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

आधुनिक युग का युवा अभूतपूर्व अवसरों के बीच खड़ा है, किन्तु उतनी ही तीव्र चुनौतियों से भी घिरा हुआ है। बाह्य सफलता की दौड़ में अन्त:करण की अभिव्यक्ति प्राय: अनसुनी रह जाती है। प्रस्तुत लेख में वर्णित – एक दृष्टान्त – आज के परिवेश में युवा जीवन के नैतिक, मनोवैज्ञानिक संघर्षों को उद्घाटित करता है, जिससे वे अपने निर्णयों के दीर्घकालिक परिणामों को विवेकपूर्वक समझ सकें।

दृष्टान्त – मनुष्य एकादशी के दिन उपवास करते हैं और उससे पुण्य प्राप्त करते हैं। हम भी वैसा ही करें, ऐसा निश्चय करके एक वन में रहने वाले बन्दरों के एक समूह ने एकादशी का उपवास रखने का निर्णय किया। अगले एकादशी के दिन वे सभी एकत्र हुए और भूमि पर आँखें मूँदकर बैठ गए। कुछ समय बाद एक बन्दर बोला – 'इस प्रकार निश्चेष्ट होकर भूमि पर बैठना सुरक्षित नहीं है। हाथियों का झुण्ड आ जाए, तो हमें रौंद सकता है, या कोई बाघ आकर हमें मार सकता है। फिर हम तो वृक्षवासी हैं; भूमि पर लगातार बैठना हमारे लिए कष्टदायक है। क्यों न हम वृक्षों के तनों पर चढ़कर शाखाओं के आरम्भिक भाग में बैठ जाएँ? वहाँ हम सुरक्षित भी रहेंगे और शाखाओं के सिरे पर लगे फलों के समीप भी नहीं होंगे। निरन्तर भूमि की ओर देखते रहना अत्यन्त उबाऊ है। क्यों न हम बारी-बारी से पहरा दें? शेष लोग इधर-उधर देख सकेंगे और ऊबने से बचेंगे। थोड़ी देर के लिए यदि दृष्टि फल पर पड़ भी जाए, तो उपवास तो नहीं टूटेगा। सबने इसे उचित माना। शीघ्र ही वे बार-बार फलों की ओर देखने लगे।

थोड़ी देर बाद एक बन्दर ने कहा – 'जब हम यहाँ बैठे ही हैं, तो फलों को छूकर देख लें कि कौन से पके और रसदार हैं। इससे कल भोजन जुटाने में सुविधा होगी। उपवास के बाद हम भूखे होंगे और अच्छे फल चुनने में समय नष्ट नहीं करना चाहेंगे।' किसी ने विरोध नहीं किया। शीघ्र ही बन्दर फलों को टटोलने लगे और अच्छे फलों पर हाथ कुछ देर ठहराने लगे। तब एक वृद्ध बन्दर बोला – 'कल प्रात: हम न केवल भूखे होंगे, बल्कि दुर्बल भी होंगे। उस समय भोजन खोजने निकलना कठिन होगा। इसलिए अभी अच्छे फल तोड़कर रख लेना ही बुद्धिमानी है।' सबने इसे उत्तम परामर्श माना और फल तोड़ने लगे।

कुछ देर बाद एक और वृद्ध बन्दर ने कहा – 'केवल छूने से अच्छे फल की पहचान नहीं होती; उसे सूँघना भी आवश्यक है। कोई फल देखने और छूने में अच्छा हो सकता है, पर उसकी गन्ध खराब हो सकती है। ऐसे फल हम खाना नहीं चाहेंगे।' सब सहमत हो गए। वे फलों को सूँघने लगे और जिनकी गन्ध उन्हें अच्छी न लगी, उन्हें फेंकने लगे। कुछ समय बीतने पर एक अन्य वृद्ध बन्दर बोला – अनुभव से मैं जानता हूँ कि जो फल देखने में सुन्दर, छूने में अच्छा और सूँघने में सुगन्धित हो, उसके भीतर सड़न या कीड़े भी हो सकते हैं। इसलिए प्रत्येक फल को थोड़ा काटकर चखना आवश्यक है, जिससे यह निश्चय हो सके कि कल प्रात: खाने योग्य फल ही हमारे पास रहें। यदि फल खराब हुआ और हमने खा लिया तो पेट-दर्द हो सकता है। केवल स्वाद लेने से, बिना निगले, उपवास नहीं टूटेगा। यह परामर्श भी सबको अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण लगा और तुरन्त लागू कर दिया गया। लेकिन कुछ ही क्षणों में बन्दर स्वाद लेने के बजाए स्वादिष्ट फल के टुकड़ों को निगलने लगे। यहीं उनके उपवास का अन्त हो गया।

इन्द्रियों की शक्ति को कम आँकने का भ्रम, अपने कार्य के लिए कुतर्कपूर्ण औचित्य गढ़ना, अति-आत्मविश्वास तथा जहाँ समझौता नहीं करना चाहिए वहाँ समझौता कर लेना, ये सब कारण युवाओं को नैतिक पतन या मनोवैज्ञानिक भ्रम की ओर ले जाते हैं।

१. इन्द्रियों की शक्ति को कम आँकने का भ्रम

प्रस्तुत दृष्टान्त में बन्दरों का प्रथम विचलन दृष्टि से आरम्भ होता है – फल केवल दिखाई देते हैं, छुए नहीं जाते। यही वह क्षण है, जहाँ इन्द्रियाँ अपनी वास्तविक शक्ति का संकेत देती हैं। युवा जीवन में दृश्य-आकर्षण – डिजिटल स्क्रीन, त्वरित मनोरंजन, सतही सम्बन्ध – केवल 'देखने' तक सीमित प्रतीत होते हैं, परन्तु वे मन में वासना, तुलना और असन्तोष का बीज बो देते हैं। इन्द्रियाँ क्रमिक रूप से कार्य करती हैं; जो आज केवल दृश्य है, वह कल आदत और

परसों आवश्यकता बन जाता है। इस शक्ति को कम आँकना विवेक की प्रथम पराजय है। युवा प्रारम्भ में संकल्प लेता है। प्रारम्भ में उसमें निष्ठा है, परन्तु क्रमशः सुरक्षा, सुविधा, अनुभव और बुद्धिमत्ता के नाम पर ऐसे निर्णय लिए जाते हैं, जो मूल संकल्प को धीरे-धीरे निष्प्रभावी कर देते हैं। अन्ततः उपवास टूट जाता है – बिना किसी एक स्पष्ट अपराध के।

यही क्रम विद्यालय-विश्वविद्यालयीय जीवन में भी देखने को मिलता है। यहाँ का वातावरण दृश्य, श्रव्य और भावनात्मक उत्तेजनाओं से भरा होता है। युवा यह मान लेता है – 'सिर्फ देखने से क्या होगा?' 'बस सुन ही तो रहा हूँ।' किन्तु इन्द्रियाँ तटस्थ नहीं होतीं। वे मन को दिशा देती हैं। दृष्टि से आरम्भ हुआ आकर्षण, धीरे-धीरे आदत बनता है और अन्ततः आवश्यकता। जो विद्यार्थी इन्द्रियों की इस क्रमिक शक्ति को नहीं समझता, वह स्वयं को स्वतन्त्र मानते हुए भी भीतर से पराधीन होता चला जाता है। शिक्षा का उद्देश्य इन्द्रियों का दमन नहीं, बल्कि उनका अनुशासन है।

२. कुतर्कपूर्ण औचित्य गढ़ना और सुविधा का दर्शन – 'सब ऐसा करते हैं' का जाल।

दृष्टान्त में प्रत्येक अगला कदम 'बुद्धिमानी' के नाम पर वैध ठहराया जाता है – सुरक्षा, सुविधा, स्वास्थ्य और भविष्य-योजना। यही कुतर्क आधुनिक युवा भी रचता है। कॉर्पोरेट जगत् में 'नेटवर्किंग', विश्वविद्यालयों में 'प्रेशर', और समाज में 'ट्रेण्ड' – ये सभी शब्द नैतिक शिथिलता के आकर्षक पर्याय बन जाते हैं। जब तर्क आत्मा की चेतावनी को दबाने लगे, तब वह विवेक नहीं, सुविधा का दर्शन बन जाता है। कुतर्क मनुष्य को गलत नहीं लगने देता; वह उसे अपने गलत को सही मानने की कला सिखा देता है। दृष्टान्त में बन्दरों ने हर गलत कदम को तर्क का आवरण दिया। यही आधुनिक छात्र का भी प्रिय शस्त्र है – प्रेशर बहुत है। सिस्टम ही ऐसा है। थोड़ा एडजस्ट करना पड़ता है। जब तर्क आत्मा की असुविधा को शान्त करने लगे, तब वह विवेक नहीं रह जाता। कुतर्क व्यक्ति को अपराधी नहीं बनाता, वह उसे अपने ही पतन का दार्शनिक बना देता है।

३. अति-आत्मविश्वास : विवेक का मौन शत्रु है। 'मुझ पर असर नहीं पड़ेगा।' 'मैं जानता हूँ, कब रुकना है।' मैं सम्भाल लूँगा' की भ्रान्ति।

बन्दरों का विश्वास था कि वे सीमा जानते हैं – वे केवल स्वाद लेंगे, निगलेंगे नहीं। यही अति-आत्मविश्वास (Over-Confidence) युवा में भी दिखाई देता है – 'मैं कण्ट्रोल में हूँ', 'मुझ पर असर नहीं पड़ेगा'। युवा आत्मविश्वास से भरा होता है, और होना भी चाहिए। किन्तु जब आत्मविश्वास विवेक से अलग हो जाए, तब वह जोखिम बन जाता है। अनुभव बताता है कि अति-आत्मविश्वास विवेक को शिथिल करता है और सावधानी को अनावश्यक ठहराता है। ऐसा होने पर जो स्वयं को अडिग मान लेता है, वही सबसे पहले डगमगाता है। वास्तविक सामर्थ्य आत्मसंयम में है, न कि जोखिम से खेलकर स्वयं को सिद्ध करने में। यह दृष्टान्त सिखाता है कि सीमा जानना पर्याप्त नहीं; सीमा का सम्मान करना आवश्यक है। आत्मसंयम कमजोरी नहीं, परिपक्वता का प्रमाण है।

४. जहाँ समझौता नहीं करना चाहिए, वहाँ समझौता

बन्दरों का उपवास एक पूर्ण संकल्प था, किन्तु छोटे-छोटे समझौतों ने उसे शून्य कर दिया। युवा जीवन में भी सिद्धान्तों पर 'थोड़ी ढील' और मूल्यों में 'थोड़ा एडजस्टमेण्ट' धीरे-धीरे सीमारेखाओं को मिटा देता है। जो रेखाएँ कभी मर्यादा थीं, वे लचीले क्षेत्र बन जाती हैं। जब सीमा नहीं रहती, तब पतन आकस्मिक नहीं, स्वाभाविक हो जाता है। कुछ मूल्य – ईमानदारी, आत्मसम्मान, सत्यनिष्ठा – ऐसे हैं जिन पर समझौता नहीं, संकल्प चाहिए। युवा जीवन में सबसे बड़ा नैतिक संकट यही है – मूल्यों को लचीला समझ लेना। नकल को 'मदद' कहना, अनुचित साधनों को 'स्मार्टनेस' कहना और चरित्र-स्खलन को 'निजी स्वतन्त्रता' कहना – ये सभी उसी प्रक्रिया के चरण हैं। कुछ रेखाएँ होती हैं, जिन्हें पार नहीं, संरक्षित किया जाता है।

उपसंहार : पतन प्रायः नैतिक समझौतों से आरम्भ होता है। यदि युवा दीर्घकालिक उत्कृष्टता चाहता है, तो उसे इन्द्रियों के प्रति सजग, तर्कों के प्रति सतर्क, आत्मविश्वास में विनम्र और मूल्यों में अडिग होना होगा। जीवन में यही सन्तुलन स्थायी सफलता का आधार बनता है। विवेक से बँधा आत्मविश्वास और संकल्प से पोषित संयम, यही युवा जीवन की सच्ची पूँजी है। यह दृष्टान्त हमें सिखाता है कि यदि आप किसी दिशा में आगे बढ़ना चाहते हैं, तो इन्द्रियों के प्रति सजग रहें, तर्कों के प्रति सतर्क रहें, आत्मविश्वास को विवेक से बाँधें और जीवन-मूल्यों पर अडिग रहें। यही हमें नैतिक या मनोवैज्ञानिक भ्रम से बचाता है, यही मूल्य-आधारित जीवन का सार और दीर्घकालिक सफलता की वास्तविक नींव है। ○○○

आद्यगुरु श्रीशंकराचार्य के स्तोत्र-साहित्य की समीक्षा

सैकत मोहान्त

शोधार्थी, संस्कृत-दर्शन विभाग,

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द शैक्षणिक शिक्षा संस्थान, बेलूड़ मठ, हावड़ा (प.बं.)

वैदिक सिद्धान्त की पुन: प्रतिष्ठा अवैदिक परम्परा को समूल विध्वंस करने के लिए भगवान उमापति शंकर ही शंकराचार्य के रूप में अवतरित हुए। यद्यपि वे प्रस्थानत्रय-भाष्यकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं, तथापि उनके रचित स्तोत्र भी विद्वानों के चित्त आनन्दित करते हैं। उनके रचित स्तोत्र केवल एक रचना नहीं, अपितु सहृदय के हृदय को आह्लादित करनेवाले तथा अलंकार, उपमा आदि उत्तमकाव्य के लक्षणों के एक उत्कृष्ट निदर्शन हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार आद्यशंकराचार्य द्वारा रचित ६४ स्तोत्र हैं[१] और कुछ विद्वानों के अनुसार उनके ७५ स्तोत्र हैं।[२] कुछ विद्वान शंकराचार्य की स्तोत्र-रचना में ही आक्षेप करते हैं। उनके मतानुसार शंकराचार्य अद्वैत मत के आचार्य थे। अद्वैत में ब्रह्म को निर्गुण-निराकार के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। अत: अद्वैताचार्य के रूप में शंकराचार्य की स्तोत्र-रचना उचित प्रतीत नहीं होती। ३२ वर्ष में कोई भी महापुरुष के द्वारा इतना लिखना सम्भव नहीं है।

– शंकराचार्य के कुछ स्तोत्रों में ऐसा संकेत मिलता है कि उन स्तोत्रों का कर्ता शंकराचार्य को मानना असंगत लगता है। जैसे कि अपराधक्षमापनस्तोत्र में 'मया पंचशीतेरधिकमपनीते तु वयसि' इस पंक्ति से यह प्रतीत होता है कि इस स्तोत्र के रचयिता की आयु ८५ वर्ष है। किन्तु शंकराचार्य की ३२ वर्षों की आयु प्रसिद्ध है[३]। अत: इस स्तोत्र के रचनाकार आचार्य नहीं हो सकते। यदि यह स्तोत्र शंकराचार्य के द्वारा रचित नहीं है, तो शंकराचार्य के नाम से कैसे प्रसिद्ध हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में विद्वान कहते हैं कि लिपिकारों के प्रमाद से यह स्तोत्र शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध हो गया। कुछ विद्वानों ने अपनी प्रसिद्धि के लिये शंकराचार्य के नाम से स्वरचित स्तोत्र प्रकाशित किए। स्वसम्प्रदाय की प्रसिद्धि के लिए कुछ ग्रन्थ शंकरकृति के रूप में प्रकाशित हुए। जैसे कि प्रपंचसार ग्रन्थ शाक्त सम्प्रदाय की प्रसिद्धि के लिये प्रकाशित हुआ। शांकरसम्प्रदाय की प्रसिद्धि के लिये विद्वानों ने शंकराचार्य के नाम से स्वरचित स्तोत्र प्रकाशित किए।

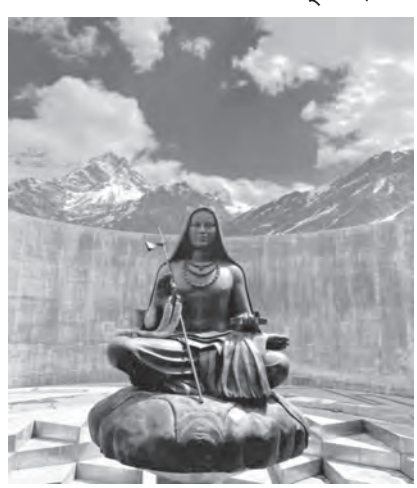

ये सभी युक्तियाँ अप्रामाणिक, निर्मूल तथा परम्पराविरुद्ध हैं। क्रमश: इन सभी युक्तिओं का खण्डन प्रस्तुत है –

* अद्वैत सिद्धान्त न जाननेवाले का यह अपलाप है कि अद्वैत सिद्धान्त में स्तोत्ररचना असंगत है। अद्वैताचार्यों के द्वारा स्तोत्रों की रचना सर्वथा युक्तिसंगत है। आचार्य शंकर ब्रह्मसूत्रभाष्य में कहते हैं कि – **''एकमपि ब्रह्मापेक्षितोपाधिसम्बन्धं निरस्तोपाधिसम्बन्धं चोपास्यत्वेन ज्ञेयत्वेन च वेदान्तेषूपदिश्यते''**[४], **''निर्गुणमपि सत् ब्रह्म नामरूपगतैः गुणैः सगुणम् उपासनार्थं तत्र तत्र उपदिश्यते'**[५] **न भिन्नाकारयोगो ब्रह्मणः आशास्त्रीय इति शक्यते वक्तुम, भेदस्य उपासनार्थत्वात्, अभेदे तात्पर्यात्**[६]**।** इन सभी वचनों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्रह्म सगुण-निर्गुण उभय अद्वैत मत में स्वीकृत है। यद्यपि ब्रह्म का स्वरूप मूलत: निर्गुण है, तथापि नाम और रूप से वह सगुण भी है। सगुण साधकों की उपासना के लिये है। निर्गुण ब्रह्म सभी का ज्ञेय है। यह भेद ही अद्वैत मत को अन्य मतों से अलग करता है। देव-देवियों की स्तुति उपासना के लिये ही हैं। अत: अद्वैताचार्य के द्वारा स्तोत्र-रचना सर्वथा संगत है।

अद्वैतमत में यद्यपि आत्मज्ञान को मोक्ष का साक्षात् साधन कहा गया है, तथापि निष्काम कर्म की तरह भक्ति को भी चित्तशुद्धि का साधन कहा गया है। ब्रह्मसूत्रभाष्य में **''यद्यपि तस्य**

भगवतो अभिगमनादिलक्षणम् आराधनम् आजस्त्रम् अनन्यचित्ततया अभिप्रेयते, तदपि न प्रतिषिध्यते। श्रुतिस्मृत्योः ईश्वरप्रणिधानस्य प्रसिद्धत्वात्'' इस आचार्य वचन से प्रतीत होता है कि ईश्वरप्रणिधान का साधन में भक्ति के साथ आचार्य का कोई विरोध नहीं है। भक्ति की अभिव्यक्ति स्तोत्र की रचना, पाठ, चिन्तन-मनन से भी सम्भव है। अत: अद्वैत मत में स्तोत्र रचना सर्वथा संगत है ।

* स्वल्प आयु में विराट स्तोत्रसाहित्य लिखना सम्भव नहीं है, यह जो आक्षेप है, वह अपनी बुद्धि के अनुसार है। शंकराचार्य साधारण पुरुष नहीं थे, अपितु वे शिवावतार थे। इसका प्रमाण कूर्मपुराण में प्राप्त होता है –

करिष्यत्यवतारिणि शंकरो नीललोहितः।
श्रोतस्मार्त्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया।
उपदेक्ष्यन्ति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम् ।।[७]

अनन्त शक्तिसम्मपन्न भगवान शंकर का अवतार होने से ही यह सामर्थ्य स्वत: सिद्ध हो जाती है।

* शंकराचार्य के स्तोत्र में जो परिचय प्राप्त होता है, वह रचयिता का परिचय नहीं, अपितु जिसके लिए वे स्तोत्र लिखे गये हैं, उसके विषय में हैं। जैसे कि गंगास्तोत्र में 'पठतु च विषयीदमपि समाप्तम् ' यह विषयी के लिये लिखा है। अत: भक्तों के लिये लिखे स्तोत्र में भक्तों का ही परिचय मिलना स्वाभाविक है। ऐसा ही अपराधक्षमापन-स्तोत्र में ८५ वर्ष के किसी भक्त के लिए लिखा गया है, ऐसा ही समझना चाहिए। अत: सम्पूर्ण स्तोत्र साहित्य आचार्य शंकर की ही कृति है, इस विषय में कोई संदेह नहीं है। शंकराचार्य के नाम से स्तोत्र प्रसिद्ध हुये हैं, इस विषय में दी गई युक्ति असंगत है।

* यह सत्य है कि शांङ्कर मठों में सभी अध्यक्ष शङ्कराचार्यपदवी से भूषित होते हैं। किन्तु अपनी रचनाओं में अपने नाम का उल्लेख ही देखा जाता है, उपाधियों का नहीं। जैसे कि विद्यारण्य, शङ्करानन्द इत्यादि। रचयिता के नाम के विषय में लिपिकारों का प्रमाद भी अकल्पनीय है। लिपिकार साधारण नहीं होते। वे अनेक शास्त्र को अध्ययन करके प्रतिलिपि करते हैं। कदाचित् अक्षरों में प्रमाद हो भी जाये, किन्तु ग्रन्थकार के विषय में प्रमाद होना असम्भव है।

* स्वरचित ग्रन्थ शंकराचार्य के नाम से प्रकाशित हो रहा है, ऐसी युक्ति भी ठीक नहीं। क्योंकि शाङ्कर ग्रन्थ में जैसा तत्त्व प्रतिपादित हुआ है, वैसा तत्त्व का प्रतिपादक अपने ही नाम से ग्रन्थ का प्रकाशन करना चाहेगा, किसी अन्य के नाम से नहीं। लोक में भी ऐसा ही देखा जाता है कि मनुष्य कुछ अच्छे कार्य अपने ही नाम से प्रसिद्ध करना चाहता है।

* अपने सम्प्रदाय की प्रसिद्धि के लिए शङ्कराचार्य के नाम से ग्रन्थ प्रकाशित करना, यह कथन भी सर्वथा असंगत है। जिस सम्प्रदाय में चार प्रसिद्ध मठ हैं, उस सम्प्रदाय में इतना मठ रहते कोई ग्रन्थ-रचना करके शङ्कराचार्य के नाम से प्रचार करे, ऐसा सम्भव नहीं है। अत: प्रपञ्चसार ग्रन्थ शङ्कराचार्य का ही है। इस ग्रन्थ की टीका शङ्कराचार्य के शिष्य पद्मपादाचार्य ने लिखा है। नृसिंहतापनीयोपनिषद्भाष्य में प्रपञ्चसार के नाम का उल्लेख है। शाक्ततत्त्व को प्रकाशित करनेवाले स्तोत्र भी शङ्कराचार्य ने ही लिखे हैं। सौन्दर्यलहरी स्तोत्र में शङ्कराचार्य जी ने जो श्रीविद्या-तत्त्व की अभिव्यक्ति की है, वह विद्वानों के मन को आह्लादित करता है।

* यह भी कथन ठीक नहीं कि शङ्कराचार्य की प्रसिद्धि के लिए विद्वानों ने ग्रन्थ-रचना की। जिन्होंने प्रस्थानत्रय के भाष्य की रचना की, उन्हें अन्य किसी रचना की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि प्रस्थानत्रय का भाष्य ही आचार्य शङ्कर की विद्वत्ता को प्रतिपादित करने में समर्थ है और शङ्कराचार्य को दूसरे के ग्रन्थ को अपने नाम से प्रकाशित कराकर प्रसिद्धि पाने की कोई अपेक्षा नहीं है। अत: ये सब कथन निर्मूल और अतार्किक हैं। अत: ये सभी स्तोत्र शङ्कराचार्य द्वारा ही रचित हैं।

किसी ग्रन्थ के रचयिता में तभी संशय होना ठीक है, जब ग्रन्थ के कोडपत्र में कहीं शङ्कराचार्य का नाम हो और कहीं किसी अन्य व्यक्ति का नाम रचयिता के रूप में हो। कोडपत्रों में यदि ग्रन्थ एक और रचयिता के नाम अनेक मिलें, तब संशय उचित माना जाता है। किन्तु शङ्कराचार्य के सन्दर्भ में जितने भी स्तोत्र मिलते हैं, वे सभी शङ्कराचार्य के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। उनके किसी भी स्तोत्र में किसी अन्य रचयिता का नाम नहीं है। रचना की शैली को आश्रय करके शङ्कराचार्य के कर्तृत्व में संशय करना भी अतार्किक है। आयु और अनुभव के भेद से रचना की शैली में भी भेद हो जाते हैं। अत: ग्रन्थ की पुष्पिका में लिखे गए कर्ता के नाम ही स्तोत्रकर्ता के रूप में गृहीत होना चाहिए। सभी स्तोत्रों की पुष्पिका में आचार्य शङ्कर के ही नाम प्राप्त होते हैं। यदि किसी स्तोत्र में अद्वैतसिद्धान्तों का खण्डन अथवा विरुद्ध-सिद्धान्त मिलता, तो भी संशय उचित होता। किन्तु ऐसा कोई भी विरुद्ध सिद्धान्त नहीं मिलता। अत: स्पष्ट प्रतीत

होता है कि सभी स्तोत्र शङ्कराचार्य के द्वारा ही रचित हैं।

अपितु शङ्कराचार्य के प्रसिद्ध स्तोत्रों में एक स्तोत्र सौन्दर्य लहरी है। इसकी रचना के सम्बन्ध में कई मत हैं। यथा –

स्तोत्रमेतद्वदन्त्येके शिवेन परिभाषितम्।
तस्यांशवतारेण शङ्करेणेति केचन ।।
केचिद्वदन्त्याद्यशक्तेर्ललिताया महौजसः।
दशनेभ्यः समुद्भूतमिति नानाविधा श्रुतिः ।।[८]

अधिकतम विद्वान इस स्तोत्र का रचयिता शङ्कराचार्य को ही मानते हैं। जब कि कुछ विद्वान इस स्तोत्र के रचनाकार महादेव को और कुछ विद्वानों ने साक्षात् ललिता को माना है। इस स्तोत्र में एक श्लोक है –

तव स्तन्यं मन्ये धरणिधरकन्ये हृदयतः
पयः पारावारः परिवहति सारस्वतमिव ।
दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव यत्
कवीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता।।[९]

इस श्लोक में शङ्कराचार्य बताते हैं – हे पर्वतराज की पुत्रि, आपके हृदय से क्षीर-समुद्र सरस्वती नदी के समान बहने लगा है। क्योंकि कोई एक द्रविण शिशु आपका दुग्धपान कर प्रौढ़ कवियों के बीच प्रतिभावान कवि हुआ। लक्ष्मीधरा, सौभाग्यवर्धिनी, अरुणामोदिनी, आनन्दगिरीय, पदार्थचन्द्रिका, गोपालसुन्दरी जैसे प्रसिद्ध अनेक टीकाओं में द्रविडशिशु पद से शङ्कराचार्य को ही सम्बोधित किया गया है। इस सन्दर्भ में उन टीकाकारों ने शङ्कराचार्य के जीवन के एक महत्त्वपूर्ण वृत्तान्त को भी उल्लेख किया है। सौन्दर्यलहरी की टीका सौभाग्यवर्धिनी में एक आख्यायिका मिलती है। भगवान शङ्कराचार्य के पिता परमेश्वरी के परम भक्त थे। वे प्रतिदिन ग्राम से बाहर जाकर परमेश्वरी को दूध से अभिषेक, पूजादि करके अवशिष्ट दुग्ध बालक के लिए ले आते थे। एक दिन बालक के मन में 'प्रतिदिन भगवती पूरा दूध पी लेती है, मेरे लिये कुछ ही अवशिष्ट रहता है' ऐसा एक विचार आया। एक बार बालक के पिता किसी ग्राम में गए और पत्नी को परमेश्वरी की सेवा समझा दी। एक दिन पत्नी भी स्त्रीधर्म से युक्त हुई। घर में बालक के अलावा और कोई नहीं था। इसलिए बालक ही दूध लेकर परमेश्वरी को स्नानादि कराने के लिए गया। पूजा करके परमेश्वरी को दूध पीने के लिए बालक ने कहा। जब माता नहीं आई, तब बालक शङ्कर रोने लगा। रोना सुनकर माता प्रकट हुई और सारा दूध पी गईं। कुछ भी अवशिष्ट नहीं है, देखकर शङ्कर फिर से रोने लगा। करुणहृदया माता अपनी गोद में बैठाकर स्तन के दूध शङ्कर को पिलाईं। तब से सभी विद्या शङ्कर के चित्त में प्रकाशित हो गईं। बाद में शङ्कर के पिता को स्वप्नादेश दिया कि यह बालक भगवान शङ्कर के अंश से है, लोकोद्धार हेतु इसका जन्म हुआ है। अतः यह स्तोत्र शङ्कराचार्य की रचना है, इसमें संशय नहीं है।

शङ्कराचार्य के जीवन-वृत्तान्त की दृष्टि से विचार किया जाए, तो यह मिलता है कि बहुत ऐसे प्रसङ्ग हैं, जहाँ उन्होंने स्वयं स्तोत्र की रचना की है। माधवीय शङ्करदिग्विजय में अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं। एक बार बालक शंकर एक दरिद्र ब्राह्मणी के घर भिक्षा के लिए गए। बालक शङ्कर ने ब्राह्मणी की दरिद्रता के निवारण हेतु माता लक्ष्मी की स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न होकर माता लक्ष्मी ने सुवर्ण आमलक फल की वृष्टि की। इसीलिए वह स्तोत्र कनकधारास्तोत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ[१०]। एक बार वाराणसी में आचार्य गंगा-स्नान करके आ रहे थे। मार्ग में एक चाण्डाल चार कुत्ते के साथ था। उसे देखकर आचार्य ने उसे दूर हटने को कहा। तब उस शिवरूपी चाण्डाल ने आचार्य को आत्मा के अभेद-तत्त्व का उपदेश दिया। ऐसे अद्भुत वाराणसीपुरपति भगवान विश्वनाथ को देखकर आचार्य ने ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च इत्यादि श्लोकों से उनकी स्तुति की। यह स्तोत्र मनीषापञ्चकम् नाम से प्रसिद्ध है। परिव्राजक रूप में आचार्य जिस तीर्थ में गए, उस तीर्थ के देव-देवीओं के विषय में अनेक स्तोत्रों की रचना की। इस प्रकार ये सभी स्तोत्र आचार्य द्वारा ही रचित हैं, यह प्रमाणित और परम्परा मान्य है। ○○○

सन्दर्भ सूची – १. श्रीशंङ्कराचार्य,बलदेव उपाध्याय, पृ. १७९ **२.** शङ्करग्रन्थावली, राजेन्द्रनाथ घोष, भाग-१, पृ.९ **३.** द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात् **४.** सूत्र. भा. १.१.१२ **५.** सूत्र. भा. १.१.१४ **६.** सूत्र. भा. ३.२.१२ **७.** श्रीकूर्ममहापुराणम्,३०/३३-३४ **८.** सौन्दर्यलहरी की टीका डिण्डिमभाष्य का मंगलश्लोक द्रष्टव्य। **९.** सौन्दर्यलहरी, श्लोक सं. ७५ **१०.** अङ्गं हरेः पुलक-भूषणमाश्रयन्ती.. इत्यादि

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. जोशी, कन्हैयालाल। सं। ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्। परिमल पब्लिकेशन्स। दिल्ली २००७ **२.** सिंह, नागशरण। सं। श्रीकूर्ममहापुराण्। नाग पब्लिशर्स। दिल्ली तृतीय संस्करण २००२। **३.** उपाध्याय, बलदेव। सं। श्रीशंकराचार्य। हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, सं १९६३ द्वितीय संस्करण। **४.** नाथ महादेव, सं.। श्रीशंकरदिग्विजय (माधवाचार्यविरचित)। श्री श्रवणनाथ ज्ञान मन्दिर। हरिद्वार, द्वितीय संस्करण। **५.** कुप्पुस्वामी, ए, सं., सौन्दर्यलहरी (लक्ष्मीधरा-सौभाग्यवर्धिनी-अरुणामोदिनी-आनन्दगिरीया-तात्पर्यदीपिनी-पदार्थचन्द्रिका-डिण्डिमभाष्य-गोपालसुन्दरी-आनन्दलहरी-कैवल्यवर्धनी, आंग्लानुवाद, टिप्पणी, प्रयोगयन्त्र तथा पूजा विधि सहित) नाग पब्लिशर्स, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान। नई दिल्ली। २००५ द्वितीय संस्करण। **६.** घोष, राजेन्द्र, सं. शाङ्करग्रन्थरत्नावली। कमर्सियल गेजेट प्रेस। कलिकाता। वं १३३४।

भजन एवं कविता

मंगल मोहक रूप तुम्हारा

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

मंगल मोहक रूप तुम्हारा, भक्तजनों का नित है ध्यान ।
पूर्ण ब्रह्म हो नित्य निरंजन, मेरे रामकृष्ण भगवान् ।।
ज्ञान-तत्त्व का दीप जलाने, भक्तों के उर भक्ति बढ़ाने।
त्रिविध ताप को शीघ्र मिटाने, आये हो प्रभु कृपानिधान ।।
तुम ही प्रभु अज्ञानहरण हो, प्रणत जनों के जीवनधन हो ।
ब्रह्मभाव के तुम वितरण हो, करते सदा प्रेम का दान।।
तुम ही प्रभु भवभयहारी हो, इस युग के तुम अवतारी हो।
तुम ही निर्गुण निराकारि हो, तुम ही भावउदधि बलवान ।।
रामकृष्ण प्रभु उर में आओ, जीवन मेरा धन्य बनाओ ।
ज्ञान-भक्ति-वैराग्य बढ़ाओ, तुम ही सकल जगत वरदान।।

स्वामी विवेकानन्द तुमको नमन

आनन्द तिवारी 'पौराणिक'

वैदिक धर्म ध्वजा फहराकर, जग में महाकाया मलय सुरभि चंदन।
हे युग दृष्टा, परिव्राजक, स्वामी विवेकानन्द तुमको नमन ।।
एकल जगत, परिवार एक । संदेश प्रेम, शान्ति, नेक ।।
सर्वधर्म सद्भाव, उपदेश। हो जग का उत्कर्ष, मिटे क्लेश।।
हे सन्त प्रवर, शत शत वन्दन ।
स्वामी विवेकानन्द तुमको नमन ।।
ऊँच नीच का भेद मिटे । अन्धविश्वास का अँधेरा छटे ।।
चाहा ऐसा स्वस्थ समाज । दोनों की सेवा, प्रभु पूजा काज ।।
भारत के स्वर्णिम विहान का, किया पूर्व अभिनन्दन ।
स्वामी विवेकानन्द तुमको नमन ।।

शंकर और विवेक

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

भारत के अध्यात्म-गगन में हैं नक्षत्र अनेक ।
पर ज्वलन्त अति प्रखर सूर्य-सम शंकर और विवेक ।।
जब-जब धर्म सनातन पर कोई भी संकट आया,
तब-तब दिव्य देह धारण कर प्रभु ने धर्म बचाया ।
धर्म और दर्शन ही है इस आर्यभूमि की टेक,
हैं ज्वलन्त अति प्रखर सूर्य-सम शंकर और विवेक।।
मत-मतान्तरों ने जब मानव के मन को भरमाया,
वैदिक धर्म लगा अकुलाने, अन्ध-तमिस्रा छाया ।
प्रकट हुए शंकराचार्य लेकर अद्वैतोद्रेक,
हैं ज्वलन्त अति प्रखर सूर्य-सम शंकर और विवेक ।।
दूर किया शंकर ने संशय, दे करके सद्ज्ञान,
ब्रह्म-जीव का भेद मिटाया हरकर तम-अज्ञान।
वैदिक धर्मध्वजा फहराकर किया कार्य अति नेक,
हैं ज्वलन्त अति प्रखर सूर्य-सम शंकर और विवेक ।।
पुनः आधुनिक युग में जब विज्ञान ने पैर जमाया,
नींव धर्म की लगी डोलने, संशय फिर से छाया ।
हुए अवतरित सप्तर्षि-मंडल के ऋषिवर एक,
हैं ज्वलन्त अति प्रखर सूर्य-सम शंकर और विवेक ।।
विश्वाचार्य विवेकानन्द ने दिया समन्वित धर्म,
व्यावहारिक-वेदान्त-दृष्टि दे प्रकट किया सब मर्म।
पूज रहे हैं वसुधाभर के नर-नारी प्रत्येक,
हैं ज्वलन्त अति प्रखर सूर्य-सम शंकर और विवेक ।।

विवेक-प्रज्ञा के आलोक में महिमान्वित आचार्य शंकर

स्वामी दयापूर्णानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

स्वामी विवेकानन्द की मानसपुत्री और शिष्या भगिनी निवेदिता ने कहा था – ''शंकराचार्य के सदृश, भारतीय दर्शन के प्रत्येक महान शिक्षक के समान विवेकानन्द के वाक्य वेदों और उपनिषदों के उद्धरणों से पूर्ण हैं।'' स्वामी विवेकानन्द किस दृष्टि से भगवत्पाद पूज्य आचार्य श्रीशंकर को देखते थे, यह बात निवेदिता को कथित उनके निम्नलिखित कथन से ज्ञात होता है। उन्होंने निवेदिता से कहा था, ''शंकराचार्य ने वेदों के मूल स्रोत तथा भारतवर्ष की जातीय परम्परा को पुनर्जागृत किया था। मैं हमेशा कल्पना करता हूँ कि युवावस्था में उन्हें मेरी तरह कोई स्वप्न आया था और उन्होंने इस प्राचीन सम्पदा को पुन: प्राप्त किया।''

स्वामी विवेकानन्द ने अपने लिखित पत्र के द्वारा भी शंकराचार्य के साथ अपने आत्मिक अभिन्नता का प्रतिपादन किया है। उन्होंने लिखा है, 'मुझे अब यह बात और भी स्पष्ट होती जा रही है कि मठ की सारी चिन्ताएँ छोड़कर कुछ समय के लिये अपनी माँ के पास वापस चला जाऊँ। वे मेरे कारण बहुत कष्ट सहन की हैं। मुझे उनके अन्तिम दिनों को सहज बनाने का प्रयास करना चाहिए। क्या आप जानते हैं, महान शंकराचार्य को भी यही करना पड़ा था। उन्हें अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपनी माँ के पास वापस जाना पड़ा था।''

इसलिए हमें लगता है कि जहाँ भी विवेकानन्द के द्वारा आचार्य शंकर से मतभेद दिखता है, वह एक प्रकार से स्वामीजी का आत्म-विश्लेषण तथा आत्म समालोचना मानना चाहिए। स्वामीजी ने स्वयं ही इस बात को कहा है कि शंकर को लोग शिव का अवतार मानते थे। एक बार श्रीरामकृष्ण के शिष्य पूज्य नाग महाशय जी ने मठ में आकर स्वामीजी को सम्बोधित करते हुए कहा, ''आज आपके दर्शन के लिये आया हूँ। शंकर की जय हो! शंकर की जय हो! आज शिव के दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया!'' स्वयं स्वामीजी जब कोलकाता में उनके भावी शिष्य शरत् चन्द्र चक्रवर्ती से पहली बार मिले, तो श्री शंकर की वाणी को उद्धृत करते हुए उनसे स्वयं विवेकचूडामणि से कुछ शब्द सुनाने लगे, ''हे बुद्धिमान, डरो मत, तुम्हें नष्ट नहीं होना है। इस जन्म-मृत्यु के सागर को पार करने के साधन हैं। मैं तुम्हें वही मार्ग बताऊँगा, जिससे त्यागी महात्माओं ने इस सागर को पार किया है।'' फिर उन्होंने उसे आचार्य शंकर की विवेकचूडामणि ग्रन्थ को पढ़ने का आदेश दिया।

सगुण ईश्वर भी वस्तुत: आत्मा ही है। स्वयं के अन्दर की गहन खोज ही भक्ति है। – आचार्य शंकर

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि वेदान्त दर्शन के महानतम आचार्य भगवत्पाद श्रीशंकर ही थे। उन्होंने अपने गम्भीर विचार से उद्भूत सिद्धान्तों के द्वारा वेदों से वेदान्त के सत्यों को निकाला और उन पर ज्ञान-दर्शन की अद्भुत प्रणाली का निर्माण किया, जिसकी शिक्षा उनके भाष्यों में मिलती है। उन्होंने ब्रह्म के सभी परस्पर विरोधी वर्णनों को एकीकृत किया और सिद्ध किया कि केवल एक ही अनन्त सत्य है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि चूँकि मनुष्य केवल धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ सकता है, इसलिए उसके क्षमतानुसार विविध रूप, भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ आवश्यक हैं। स्वामीजी आगे कहते हैं कि श्रीशंकराचार्य के अनुसार अद्वैत वेदान्त वेदों का सर्वोच्च गौरव है, परन्तु अन्य सभी वेद भी आवश्यक हैं, क्योंकि वे कर्म और उपासना की शिक्षा देते

हैं और इनके माध्यम ही से अनेक लोग भगवान तक पहुँचते हैं। वेद-ग्रन्थों का सार धारणा करना और साथ ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना, शंकर की महान देन है। पुस्तकें ईश्वर की उपलब्धि तो नहीं करा सकतीं, परन्तु अज्ञान का नाश कर सकती हैं। उनका कार्य नकारात्मक है और शंकर की सबसे बड़ी देन है कि जो सूक्ष्म तत्त्व या विचार कितनी गहराई में क्यों न छिपे हों, उन्होंने उसे हमारे समक्ष प्रस्तुत किया।

स्वामीजी ने कहा कि आज आधुनिक भारत में अद्वैतवादियों का जो एक सम्प्रदाय हम देखते हैं, वह शंकराचार्य के ही अनुयायियों से बना है। शंकराचार्य के अनुसार, ईश्वर माया के माध्यम से उपादान और निमित्त कारण दोनों है, परन्तु वास्तव में नहीं। अद्वैत वेदान्त के इस माया बोध को समझने के लिये यह सर्वोच्च सिद्धान्तों में से एक है। स्वामीजी का मानना है कि यह आचार्य शंकर ही थे जिन्होंने सबसे पहले माया के साथ समय, स्थान और कार्य-कारण की एकता तथा सम्पर्क का विचार रखा और उन्हें आचार्य की टीकाओं में देखने का सौभाग्य मिलता है। अद्वैतवादियों के कई वर्ग हैं और प्रत्येक ने इस सिद्धान्त को किसी न किसी अर्थ में समझा है। शंकर ने इस सिद्धान्त को इसी अर्थ में पढ़ाया। उनकी शिक्षा यह है कि ब्रह्माण्ड जैसा कि वह प्रतीत होता है, अपनी वर्तमान चेतना में प्रत्येक व्यक्ति के लिए सभी उद्देश्यों के लिए सत्य है, लेकिन जब चेतना उच्चतर रूप धारण कर लेती है, तो वह लुप्त हो जाता है।

स्वामीजी का कहना है कि शंकर कहते हैं, आप ईश्वर हैं और बाकी जो भी आप सोचते हैं, वह गलत है। 'यह जो संसार दिखता है, मैं इसका रहस्य उजागर करूँगा – मैं जानूँगा कि दु:ख है या अन्य कुछ है। मैं इससे किसी प्रेत की तरह नहीं भागता। मैं इसके बारे में सब कुछ जानूँगा। वह असीम दुखदायी पीड़ा, जो इसकी खोज में हमेशा साथ देती है, मैं इसे पूरी तरह से ग्रहण कर रहा हूँ। क्या मैं कोई पशु हूँ कि तुम मुझे सुख-दु:ख, क्षय और मृत्यु से डराते हो, जो कि इन्द्रियों के परिणाम मात्र हैं? मैं इसे जानूँगा। इसके लिये अपना जीवन दे दूँगा। इस संसार में जानने योग्य कुछ भी नहीं है। इसलिए यदि इस सापेक्ष अस्तित्व से परे कुछ है, यदि ऐसा किसी ने कहा है, तो मुझे केवल वही चाहिए। चाहे सुख हो या दुख, मुझे इसकी चिन्ता नहीं है।'

शंकराचार्यजी के धर्म-दर्शन का महान विचार उपनिषदों के स्तम्भ पर आधारित है। ब्राह्मणत्व का आदर्श भारत में समग्र मानव जाति का लक्ष्य है, जैसा कि श्रीशंकराचार्यजी ने अपने गीता-भाष्य के आरम्भ में अद्‌भुत ढंग से प्रस्तुत किया है, जहाँ वे ब्राह्मणत्व तथा उसकी परम्परा की रक्षा के लिए ईश्वर के बारम्बार यहाँ अवतीर्ण होकर आने की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं कि इस महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वैसे ब्रह्मज्ञ पुरुष का सान्निध्य आवश्यक है।

स्वामीजी विवेकानन्द कहते हैं, शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ। उन्होंने समाज में उसके पूर्व के गौरव को पुन: स्थापित करने में अथक परिश्रम किया।

स्वामी विवेकानन्द बताते हैं कि शंकराचार्य और उनके संन्यासियों द्वारा संगठित एक नए उद्यमी दार्शनिक स्रोत द्वारा संचालित और इस भारत की आध्यात्मिक कला और साहित्य द्वारा सुशोभित, एक नवजागृत भारत का उदय पुराने खण्डहरों पर हुआ। उसके सामने जो कार्य था, वह बहुत ही कठिन था और समस्याएँ इतनी विशाल थीं कि उनके पूर्वजों ने कभी भी उनका सामना नहीं किया था। पिछले एक हजार वर्षों या उससे भी अधिक समय से, इस महान कार्य की धारा चलती आ रही है, जिसमें समय-समय पर परिवर्तन का विस्फोट भी हुआ है। उन्होंने उपनिषदों या वेदों के दार्शनिक अंशों को अपना आधार बनाया। उन्होंने व्यास देव के मीमांसा-दर्शन और श्रीकृष्ण के उपदेश गीता को सामने लाया। उनके बाद के सभी आन्दोलनकारी आचार्यों ने भी यही किया। शंकराचार्य के आन्दोलन ने अपनी उच्च बौद्धिकता के द्वारा अपना मार्ग प्रशस्त किया। दक्षिण में शंकर और रामानुज के आध्यात्मिक उत्थान के बाद एकजुट जातियों और बहुत शक्तिशाली साम्राज्यों का सार्वभौम भारतीय क्रम स्थापित हुआ। जब उत्तरी भारत बारम्बार मध्य एशियाई आक्रमणकारी दस्युओं के कारण विवादों में जकड़ा हुआ था, तब यह भारतीय धर्म और सभ्यता का शरणस्थल था।

स्वामीजी कहते हैं कि भारत में श्रीशंकराचार्यजी ने सनातन वैदिक धर्म की दृढ़तापूर्वक पुन:स्थापना की। उन्होंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उचित अनुपात में समन्वय और संतुलन स्थापित किया। इस प्रकार राष्ट्र अपने खोए हुए जीवन को पुन: प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर हुआ। परन्तु भारत में तीस करोड़ आत्माओं को जागृत करना है,

इसलिए इसमें विलम्ब हो रहा है। हमारे यहाँ अनेक सुधारक हुए हैं – आचार्य शंकर जैसे महान सुधारक थे, जो सदैव ही सकारात्मक रहे और तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार निर्माण किया। यही हमारी विशिष्ट कार्य-पद्धति है। ऐसे परिवर्तन, समाज में ऐसी क्रान्ति भारत में बार-बार होती रही है। केवल इसी देश में ये परिवर्तन धर्म के नाम पर हुए हैं, क्योंकि धर्म भारत का जीवन है, धर्म इस देश की भाषा है, इसकी समस्त राष्ट्रीय गतिविधियों का प्रतीक है। शंकराचार्य और उनके समाज से इन सभी प्रकार के अन्य सम्प्रदायों में, धर्म की लहर धुआँ उगलती, गरजती, उमड़ती हुई आगे से टूटती है, जबकि पीछे से शाश्वत सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। शंकराचार्य दयालु थे। इसीलिए उन्होंने कहा कि गृहस्थ भी उपनिषदों का अध्ययन करें, इससे उन्हें लाभ ही होगा, उन्हें कोई हानि नहीं होगी।

स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा है कि श्रीशंकराचार्य जैसे महान आचार्य ने उपनिषदों के द्वारा प्रतिपादित मोक्ष और समानता के शाश्वत आधार पर समाज को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया था। उन्होंने आध्यात्मिकता और नैतिकता के उन स्रोतों का दोहन किया, जिनसे अनुगामी संन्यासियों ने गहनता से अमृत-पान करके अपनी-अपनी आध्यात्मिक और सामाजिक उन्नति का प्रचार करने के लिए ऊर्जा अर्जित की। भगवान भाष्यकार शंकराचार्य की महान महिमा यह है कि यह उनकी प्रतिभा ही थी, जिसने व्यास देव के विचारों को अत्यन्त अद्‌भुत अभिव्यक्ति प्रदान की। व्यासदेव जी ने वेदों को सुचारु रूप से विभागशः ग्रथित किया। कालान्तर में जीर्ण उस सनातन हिन्दू परम्परा के पुनरुद्धार का नेतृत्व उस युवा संन्यासी शंकराचार्य ने किया। उन्होंने वेदों को मानो पुनर्जीवित किया। इन सैकड़ों वर्षों में उनके समय से लेकर आज तक, भारतीय जनता को धीरे- धीरे वेदान्त धर्म की प्राचीन शुद्धता की ओर वापस लाया गया है। भगवान शंकराचार्य यह जानते थे कि अचानक परिवर्तन नहीं हो सकता है। उनके पास एकमात्र मार्ग यही था कि वे धीरे-धीरे वर्तमान धर्म को सर्वोच्च आदर्श तक ले जाएँ।

तुम्हें शंकर का ही अनुसरण करना चाहिए।

- स्वामी विवेकानन्द

स्वामीजी कहते हैं कि आचार्य के द्वारा स्थापित सम्प्रदाय की व्याख्याओं में हम पाते हैं कि अधिकांश उद्धृत प्रमाण उपनिषदों से हैं, स्मृतियों से बहुत कम ही कोई प्रमाण उद्धृत किए गये हैं, सिवाय किसी ऐसे बिन्दु को स्पष्ट करने के लिए जो श्रुतियों में शायद ही पाया जा सके। परन्तु श्रीशंकराचार्य ने श्रीमद्‌भगवद्‌गीता पर महान भाष्य लिखकर इसे प्रसिद्ध बना दिया। शंकराचार्य की महान महिमा गीता का उपदेश था। इस महापुरुष ने अपने महान जीवन के अनेक महान कार्यों में से एक महानतम कार्य किया – श्रीमद्‌भगवदगीता पर अत्यन्त सुन्दर भाष्य का लेखन। भारत में सभी सम्प्रदायों के संस्थापकों ने उनका अनुसरण किया है और प्रत्येक ने गीता पर एक-एक भाष्य लिखा है। आधुनिक काल में सभी अद्वैतवादी आज शंकराचार्य के अधीन हो गए हैं और शंकराचार्य तथा उनके शिष्य दक्षिणी तथा उत्तरी भारत में अद्वैत के महान प्रचारक रहे हैं। दोष यह है कि आधुनिक भारत में हम शंकराचार्य के उपदेशों और परामर्शों को भूल गए हैं और केवल भोजन की थाली तक धर्म को केन्द्रित कर चुके हैं। स्वामीजी स्वयं आचार्य शंकर को बहुत श्रद्धा करते थे। उन्होंने अपने राजयोग ग्रन्थ में नाड़ी-शुद्धि के प्रसंग में लिखा है, 'चूँकि भाष्यकार शंकराचार्य इतने महान अधिकारी हैं कि वे इसका परामर्श देते हैं, इसलिए मैं उचित समझता हूँ कि इसका उल्लेख किया जाना चाहिए। मैं श्वेताश्वतर उपनिषद पर उनके भाष्य से उनके निर्देशों को उद्धृत करूँगा, इत्यादि।'

श्रीशंकराचार्य के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''भारत को जीवित रहना था, इसलिये पुनः भगवान का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने कहा था, 'जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब मैं आता हूँ। वे फिर से आये। इस बार भगवान का दक्षिण प्रदेश में अवतार हुआ। उस ब्राह्मण युवक का, उस अद्भुत प्रतिभाशाली शंकराचार्य का अभ्युदय हुआ, जिसके बारे में कहते हैं कि उसने सोलह वर्ष की आयु में ही अपनी सभी ग्रन्थ-रचनाएँ पूर्ण कर ली थी। उस सोलह वर्ष के अद्‌भुत बालक और उसकी रचनाओं पर आधुनिक सभ्य संसार विस्मित हो रहा है। उसने समग्र भारत को उसके प्राचीन विशुद्ध मार्ग पर लाने का संकल्प किया था। परन्तु यह कार्य कितना कठिन और विशाल था, इस पर थोड़ा विचार करो।''

उसके बाद त्याग-सूर्य का उदय हुआ और उन्होंने एक

शेष भाग पृष्ठ २३३ पर

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो निर्मल मन बालकवत् जग को, दिव्य प्रेम का दान करैं ।
जो पापतापहारिणी मातु, सबको सुख-शान्ति प्रदान करैं ।
जो निज उन्नत-निर्मल चरित्र से, निर्भयता संचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।४६।।
जो आध्यात्मिक भावाधीश्वर, अध्यात्म-सम्पदा दान करैं ।
जो अवगुण दोषदृष्टि से विरहित, माँ का प्रेम प्रदान करैं ।
जो गुरुप्रदत्त अध्यात्म-दान का, जग-वितरण साभार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।४७।।
जो दक्षिणेश्वर कालीमन्दिर में, ईश्वरमय हो वास करैं ।
जो अनासक्त सेवा-ममता, के द्वारा भव संत्रास हरैं ।
जो बारम्बार परीक्षण करके, निज गुरु को स्वीकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।४८।।
जो दिव्य भावविह्वलता में, लीला सहचर पहचान करैं ।
जो सेवा-ममता-विनम्रता से, सबको शान्ति प्रदान करैं ।
जो ध्यानसिद्ध अनुपम प्रतिभा से, चकित सकल संसार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।४९।।
जो प्रबल भावतन्मयता में, ईश्वर से वार्तालाप करैं ।
जो प्रेम-दुलार-दान से मन को, सहज आप से आप करैं ।
जो दिव्य चेतना में उन्नत, होने का धर्म प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।५०।।
जो इच्छा या संस्पर्श मात्र से, दिव्य भाव-संचार करैं ।
जो मातृ प्रेम-आकर्षण से, सेवा का भाव-प्रसार करैं ।
जो निज ओजस्वी वाणी से, तन-मन में बल-संचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।५१।।
जो सजग दृष्टि रखकर आध्यात्मिक, साधन का उपदेश करैं ।
जो मातृस्नेह की विमल प्रभा से, प्लावित हृदय-प्रदेश करैं ।
जो पवित्रता, निःस्वार्थ भाव का, सेवा धर्म प्रचार करैं ।।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।५२।।
जो ईश्वर के प्रति प्रेमाकर्षण, का ही सद्-उपदेश करैं ।
जो जगप्रपंच में अनासक्त, सेवा-आचरण विशेष करैं ।।
जो कपट, दम्भ, कायरता पर ही, बारम्बार प्रहार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।५३।।
जो बारम्बार परीक्षण करके, शिष्यों को स्वीकार करैं ।
जो मातृस्नेह, ममता से मन को, उन्नत, सरल, उदार करैं ।
जो कट्टरता, पाखण्ड, स्वार्थ, दुर्बलता का प्रतिकार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।५४।।
जो अनायास ही भावमग्न हो, इष्ट से वार्तालाप करैं ।
जो मातृ-स्नेह-ममता से मन को, निर्विकार, निष्पाप करैं ।
जो ध्यानमग्न हो राष्ट्र-प्रगति का, चिन्तन बारम्बार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।५५।।
जो दिव्यरसामृत-वितरण से ही, चित्त-मलिनता दूर करैं ।
जो मातृप्रेम की दिव्य प्रभा से, आप्लावित भरपूर करैं ।
जो अमृत की सन्तानों का, शुभ सम्बोधन बहुबार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।५६।।
जो दिव्य, इन्द्रियातीत प्रेम में, मन को मग्न अपार करैं ।
जो परसेवा-सत्कार-साधना, से अपनत्व-प्रसार करैं ।
जो निःस्वार्थी, पवित्र मन को, आकर्षित बारम्बार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।५७।।
जो मात्र जीविकोपार्जन वाली, शिक्षा का परिहार करैं ।
जो नारी शिक्षा-सदाचार को, प्रोत्साहित बहुबार करैं ।
जो शिक्षा द्वारा मनुज दिव्यता, प्रकटन धर्म प्रचार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।५८।।
जो तीर्थ देवघर में विपन्न जन, हेतु रुदन बहुबार करैं ।
जो तीर्थाटन से तपोसाधना, सेवा-व्रत संचार करैं ।
जो निखिल विश्व को तीर्थ समझकर, सेवा-धर्म प्रचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।५९।।
जो सरलमना बालक भक्तों-संग, विविध हास-परिहास करैं ।
जो निज समीप आगत जन-मन की, भव-भय-विपदा नाश करैं।
जो उन्नत जीवन-गठन हेतु, उत्साहित बारम्बार करैं ।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं ।।६०।।

बच्चों का आंगन

जगद्गुरु रामानुजाचार्य जी की जीवनी एवं शिक्षा

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, ग्यारहवीं शताब्दी के एक महान भारतीय दार्शनिव, समाज सुधारक और श्री वैष्णव परम्परा के प्रमुख संत रामानुजाचार्य के जीवन के विषय में पढ़ेंगे, जिनका जन्म दिन चैत्र बैशाख महीने में शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि (अप्रैल या मई महीने) को मनाया जाता है। रामानुजाचार्य स्वामी ने सबसे पहले समानता का संदेश दिया था। भारत के तेलंगाना राज्य में हैदराबाद के बाहरी क्षेत्र मुचिंटल (रंगारेड्डी जिले) में उनकी २१६ फीट ऊँची प्रतिमा लगाई गई है जिसे स्टैच्यू ऑफ इक्वालिटी का नाम दिया गया है। यह प्रतिमा सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल और जस्ते से बनी हुई है, जबकि दूसरी मूर्ति १२० किलो सोना से बनी जो कि मंदिर में नीचे गर्भगृह में स्थित है।

बच्चो, उन्होंने श्रीभाष्यम् और वेदान्त संग्रह जैसे महान ग्रंथों की रचना की और पूरे देश में भ्रमण करते हुए वेदान्त और वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार किया। उनका जन्म सन् १०१७ में तमिलनाडु के पेरंबदूर में एक तमिल परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम केशव सौमयाजी और माता का नाम कांतिमती था। १६ वर्ष की उम्र में ही उनका विवाह कर दिया गया था। पिता की मृत्यु के उपरान्त वे कौंची चले गये, जहाँ उन्होंने वेदाध्ययन प्रारम्भ किया। उनका ज्ञान अल्प समय में ही इतना बढ़ गया कि उनके गुरु श्रीयादव प्रकाश जी के लिये उनके तर्कों का निवारण करना कठिन हो गया तथा कुछ समय पश्चात् उन्हें गुरुकुल से निकाल दिया गया। दक्षिण भारत के श्रीरंगम के मठाधीश श्री यमुनाचार्य जी से दीक्षा लेने जब वे वहाँ पहुँचते उससे पूर्व ही उनकी (यमुनाचार्य जी की) मृत्यु हो गई थी। जब रामानुजाचार्य वहाँ पहुँचे तब उन्होंने यमुनाचार्य जी के पार्थिव शरीर को देखा। उनके दाहिने हाथ कि तीन उँगलियाँ मुड़ी हुई देखकर तीन बड़े संकल्प लिए जिसे बोलते ही एक-एक तीनों उँगलियाँ सीधी होती गईं। उनके तीन संकल्प – मैं संकल्प करता हूँ कि (१) मैं वैष्णव दीक्षा के द्वारा सब जीवों को ईश्वर के सम्मुख करूँगा। (२) मैं लोगों की रक्षा हेतु समस्त अर्थों का संग्रह कर श्री भाष्य की रचना करूँगा। (३) जिन पराशर मुनि ने लोगों के प्रति दयावश जीव, ईश्वर तथा उन्नति का उपाय स्पष्ट रूप से समझाते हुए विष्णु पुराण की रचना की है, उनका ऋण उतारने के लिये मैं किसी महान भक्त को उनका नाम दूँगा।

१८ बार लौटाये जाने के पश्चात उन्होंने गोष्ठीपुर जी द्वारा अष्टाक्षर नारायण मंत्र की दीक्षा दी और समझाया कि इस गुप्त मंत्र के कानों में पड़ जाने पर व्यक्ति पापों से छूट जाता है। इसे किसी अयोग्य को नहीं बताना। गुरु के उपदेश का उल्लंघन करते हुए उन्होंने मन्दिर की छत पर चढ़कर सैकड़ों नर-नारियों के सामने चिल्लाकर मंत्र बता दिया। इससे रुष्ट होकर उनके गुरु ने उन्हें नरक जाने का श्राप दिया। तब रामानुज ने उत्तर दिया – यदि मंत्र सुनकर हजारों नर-नारियों की मुक्ति हो जाए, तो मुझे नरक जाना भी स्वीकार्य है। ऐसा उत्तर सुनकर उनके गुरुदेव प्रसन्न हो गये। गृहस्थ में रहकर अपने उद्देश्य को पूरा करना कठिन होना देखकर अपनी गृहस्थी को त्याग दिया। भक्ति मार्ग का प्रचार करते हुए उन्होंने संस्कृत में नौ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों (नवरत्न) की रचना की। उनके सबसे प्रसिद्ध कार्यों में श्रीभाष्य (ब्रह्मसूत्र पर टीका), गीता भाष्य और वेदार्थ संग्रह शामिल है। तथा देशभर में भ्रमण करके लाखों लोगों को भक्ति मार्ग में प्रवृत्त किया और कई जीर्ण-शीर्ण हो चुके पुराने मंदिरों का पुनः निर्माण कराया। इनमें प्रमुख रूप से श्रीरंगम्, तिरूनारायणपुरम् और तिरुपति मंदिर प्रसिद्ध है। वृद्धावस्था में श्रीरामानुज नदी में स्नान करने जाते समय ब्राह्मण कन्धे का सहारा लेकर जाते और नहाने के बाद शूद्र के कन्धे का सहारा लेकर लौटते। एक दिन एक पंडित के कारण पूछे जाने पर आचार्य बोले, मैं शरीर और मन दोनों का स्नान करता हूँ। ब्राह्मण का सहारा लेकर जाता हूँ और शरीर का स्नान करता हूँ, किन्तु तब मन का स्नान नहीं होता, क्योंकि उच्चता का भाव पानी से नहीं मिटता। वह स्नान कर शुद्र का सहारा लेने पर ही मिटता है, ऐसा करने से मेरा अहंकार धुल जाता है और सच्चे धर्म के पालन की अनुभूति होती है। श्रीरामानुज १२० वर्ष की आयु तक श्रीरंगम में रहे। वृद्धावस्था में उन्होंने श्रीरंगनाथ जी से देहत्याग की अनुमति लेकर अपने शिष्यों के समक्ष अपने देहावसान की इच्छा की घोषणा कर दी।

तो बच्चो, रामानुजाचार्य जी के जीवन से मुख्य रूप से हमें ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति, सामाजिक समानता और मानवता की सेवा की शिक्षा मिलती है। उन्होंने सिखाया कि ईश्वर की दृष्टि में सभी प्राणी बराबर है और भक्ति का मार्ग सभी के लिये खुला है। ○○○

गीतातत्त्व-चिन्तन

पन्द्रहवाँ अध्याय (१५/२)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १५वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

अनासक्ति और वैराग्य द्वारा ही
संसार-चक्र से मुक्ति सम्भव

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-
मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा।।३।।

अस्य रूपम् तथा (इस संसार-वृक्ष का जो रूप है) इह न उपलभ्यते (वैसा यहाँ नहीं देख सकते) न आदि: च न अन्त: (न तो इसका आदि है और न अन्त है) च न सम्प्रतिष्ठा (तथा न कोई स्थिति है) एनम् सुविरूढमूलम् अश्वत्थम् (इस दृढ़ मूलों वाले संसार-वृक्ष को) दृढेन असंगशस्त्रेण छित्वा (दृढ़ वैराग्यरूपी शस्त्र द्वारा काटकर)।

''इस संसार वृक्ष का जो रूप है, वैसा यहाँ नहीं देख सकते, न तो इसका आदि है और न अन्त है तथा न कोई स्थिति है, इस दृढ़ मूलों वाले संसार-वृक्ष को दृढ़ वैराग्यरूपी शस्त्र द्वारा काटकर।''

अब इस तीसरे श्लोक में कहते हैं, संसार में इस अश्वत्थ के रूप को हम इस प्रकार से देख नहीं सकते। इसका कोई आदि नहीं है, कोई अन्त नहीं और बीच में भी इसकी कोई स्थिति नहीं है। इसकी जड़ अत्यन्त गहराई में गई हुई है। दृढ़ अनासक्ति का शस्त्र लेकर इस संसार-वृक्ष का छेदन करना चाहिए। इस श्लोक का अन्दरूनी अर्थ यह है कि जिस तरह हम अपनी आँखों से अन्य वृक्षों को देख सकते हैं, उस प्रकार से यह संसार-वृक्ष दीखता नहीं है। कोई ज्ञानी आकर हमको दिखाना भी चाहे कि हमारे वृक्ष की जड़ें कितनी मजबूती से गहराई में चली गई है, इसकी कितनी शाखाएँ-प्रशाखाएँ निकल आई हैं, तो हम ध्यान ही न देंगे। हमारी बुद्धि बहुत भोथरी है। उससे हम संसार-वृक्ष को पकड़ नहीं पाते। हम जान नहीं पाते कि हमारी आसक्ति कहाँ तक गई है। यदि हम जान भी जाएँ कि हमारी आसक्ति कहाँ है, तो हम उस आसक्ति को टिकाए रखना चाहते हैं। तात्पर्य यह है कि इस संसार-वृक्ष की जड़ को कोई दिखा भी दे, तो भी उसे मैं स्वीकार नहीं करता। इसलिए कहा कि बाहर के वृक्ष का रूप तो दिखाई पड़ता है, पर संसार-वृक्ष का रूप कौन देखे? हमारे भीतर का संसार हमको जबरदस्ती दिखा दिया जाए, तो हम घबरा जाएँ। ऊपर से तो मनुष्य बहुत सुन्दर दिख ले, बन-ठन ले, सुन्दर बातें कह ले, पर कोई ऐसी मशीन हो कि उसके भीतर का संसार दिखा दे, तो मालूम पड़ेगा कि वह कितना विकृत है। इसलिए उसको हम दबा देना चाहते हैं। कभी उसका चिन्तन ही नहीं करना चाहते। जानना ही नहीं चाहते कि हमारे भीतर कैसी पाशविक, कैसी पैशाचिक वृत्तियाँ हैं। ब्रह्म द्वारा उपजाया अश्वत्थ तो अव्यय है। उसका तो छेदन सम्भव ही नहीं है। मुझे संकल्प करना चाहिए कि मैं अपने मन में झाँक कर देखूँगा कि मेरी कौन-कौन सी भावनायें अत्यन्त प्रबल हैं, संवेदनात्मक मन से अपने संसार-वृक्ष को देखकर दृढ़ असङ्गता का अस्त्र लेकर उसकी मजबूत जड़ों को भी हिलाया जा सकता है, वृक्ष को काटा जा सकता है।

परन्तु केवल असङ्गता के दृढ़ शस्त्र को ले जाने से ही काम नहीं बनेगा। कोई बतानेवाला तो चाहिए कि उसे मैं काटूँ कैसे! कहीं ऐसा न हो कि काटने लगूँ, तो कटकर वह मुझ पर ही गिर पड़े और मैं उसके नीचे दबकर मर जाऊँ। मुझे सावधानी रखनी पड़ेगी। यही सावधानी है मार्गदर्शन। तुमने अनुभव किया कि तुम्हारे अन्दर यह संसार-वृक्ष लहलहा रहा है। इसे तुम्हें वैराग्य-शस्त्र से काटना है और यह पता भी तुम्हें चल ही गया है कि जब तक तुम इसे जड़ से नहीं काटोगे, तब तक इसका अस्तित्व मिटेगा भी नहीं। ऊपर-ऊपर काट देने से यह फिर से हरा-भरा हो जाएगा। जडे से काट देने का निश्चय करके तुम असङ्ग का, वैराग्य का, निर्लेपता का सूत्र लेकर दृढ़ शस्त्र को साथ में लेकर उस वृक्ष के पास जाते हो, पर तुम्हें उपाय जान लेना चाहिए कि उसे काटना कैसे है।

वैराग्य में स्थायित्व आवश्यक

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।।४।।

ततः तत् पदम् (उसके पश्चात् उस परम पद को) परिमार्गितव्यम् (खोजना चाहिए) यस्मिन् गताः भूयः न निवर्तन्ति (जिसमें गए हुए पुरुष फिर लौटकर नहीं आते) च यतः पुराणी प्रवृत्तिः प्रसृता (और जिससे सनातन प्रकृति विस्तार को प्राप्त हुई है) तम् एव आद्यम् पुरुषम् (उसी आदिपुरुष के) प्रपद्ये (शरण जाना चाहिए)।

''उसके पश्चात् उस परम पद को खोजना चाहिए, जिसमें गए हुए पुरुष फिर लौटकर नहीं आते और जिससे सनातन प्रकृति विस्तार को प्राप्त हुई है, उसी आदिपुरुष के शरण जाना चाहिए।''

अतः इस तरह वृक्ष को काटने के लिए तैयार हो जाने के बाद उस पद को पाने का प्रयत्न करो, जहाँ पर पहुँचकर फिर से आना नहीं होता। वृक्ष काटने को जब तत्पर हो ही गए हो, तो ऐसा काटो कि फिर से वह संसार-वृक्ष लहलहाए नहीं, फिर से उसमें कोपलें फूटें नहीं, फिर से नए-नए अंकुर उगें नहीं। ऐसा न हो कि तुम्हारी मेहनत पर पानी न फिर जाए, इसलिए उस धाम के सम्बन्ध में जान लो, जहाँ पहुँचने के बाद फिर से लौटना नहीं होता। जब तुम असङ्ग का शस्त्र लेकर चले हो, वैराग्य का शस्त्र लेकर चले हो, तो ऐसे चलो कि वैराग्य तुम्हारे जीवन से वापस चला न जाए। रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि वैराग्य आता तो सबके जीवन में है, कभी किसी की मृत्यु होने पर, कभी कोई भारी आघात लगने पर, किन्तु वह वैराग्य तपे तवे पर गिरी पानी की बूँद की तरह एक क्षण में छन्न से उड़ जाता है। आज वैराग्य आया और कल पैसा आ गया, तो हम कहेंगे, 'भगवान तुम्हारी जय हो।' उसके बाद जिसने (भगवान ने) दिया, उसे ही भुला देंगे और जो पैसा मिला, उसी में डूब जाएँगे।

ठीक से न काटे जाने पर संसार-वृक्ष कहाँ से, किस जड़ से रस ग्रहण करके फिर से फलने-फूलने लगता है, इसका हमें पता ही नहीं चलता। जीवन में वैराग्य को लेकर जब मैं चला हूँ, तो संसार-वृक्ष को उत्पन्न करनेवाले सनातन पुरुष से प्रार्थना करता हूँ, 'हे प्रभो! मैं तुम्हारी ही शरण में आता हूँ। तुम्हीं संसार-वृक्ष को सुखाना जानते हो। तुम्हारी कृपा जब जीव पर होती है, तब जीव तुम्हारी कृपा से ही इस संसार-वृक्ष को सुखाने में समर्थ होता है। जीव का पुरुषार्थ भगवान की कृपा को खींच लाता है। पुरुषार्थ और भगवत्कृपा का सम्बन्ध यही है कि हमारा जो पुरुषार्थ है, वह बस इतना ही है कि उसके सहारे हम भगवान की कृपा को खींच लाएँ।

जैसे बच्चे का पुरुषार्थ इतना ही है कि रोकर अपनी माँ का सान्निध्य प्राप्त कर ले। माँ आकर कृपाकर बच्चे को अपनी गोद में उठा लेती है। माँ कृपा न करती, तो अपने पुरुषार्थ से बच्चा उसकी गोद में चढ़ नहीं सकता था। हाँ, इस कृपा को उसने अपने पुरुषार्थ से ही आकृष्ट किया। खाने या खिलौने में न रमकर माँ की गोद के लिए ही रोता जाए, तो माँ के पास उसे गोद में उठा लेने के सिवाय दूसरा कोई चारा ही नहीं रहता।

इसी तरह जीव का पुरुषार्थ यही है कि वह भगवान की कृपा के लिए प्रार्थना करे – तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये – तुम्हीं आदि पुरुष हो प्रभु ! तुम्हीं से यह सनातन प्रकृति चली है। यह संसार-वृक्ष तुम्हीं से उत्पन्न हुआ है। मैं कुछ नहीं कर सकता प्रभु ! तुम्हीं परमधाम हो। कृपाकर दो प्रभु! तुम्हीं मुझे ठीक रास्ते पर ले चलो। तुम मेरे वैराग्य की अग्नि को और भड़काओ। उसे तुम मन्द न होने दो। ऐसी प्रार्थना, ईश्वर-शरणागति, ईश्वर की शरण में चले जाना, यह वह

स्थिति है, जिसमें ज्ञान भी हो, वैराग्य भी हो, भक्ति भी हो। ऐसा जब होता है, तब भगवान की कृपा होती है और हमें वह शस्त्र प्राप्त होता है, जिसे कहा सुदृढ़ शस्त्र।

अव्यय पद की प्राप्ति कैसे

पहले श्लोक में भगवान से निकला संसार-वृक्ष। दूसरे श्लोक में यह जीव अपने लिए संसार-वृक्ष की रचना करता है, उसका स्वरूप वर्णित किया। तीसरे श्लोक में कहा कि जीव पुरुषोत्तम ईश्वर के पास तभी जा सकता है, जब अपने संसार-वृक्ष का छेदन कर ले। छेदन करने के लिए पहले तो उसमें उस वृक्ष को पकड़ने की योग्यता आनी चाहिए। उसके बाद शरणागति का भाव लेकर ईश्वर की ओर चलें और प्रार्थना करें कि प्रभु हमारे वैराग्य के शस्त्र को पैना बनाकर रखें, जिससे वह संसार-वृक्ष काटा जा सके। तब हम कैसे बनेंगे, यह पाँचवें श्लोक में बताते हैं। जिसके जीवन से मान ही चला गया, मोह भी चला गया। संग के दोष जिनसे जीवन में आसक्ति उत्पन्न होती है, आनुषंगिक दोष आता है, उन्हें जीत लेंगे और अध्यात्मवृत्ति को हरदम जगाकर रखेंगे। हममें ऐसे गुण आएँगे और हमारी वासनाएँ, कामनाएँ जो हमें संसार की ओर खींचती हैं, उनसे हम निवृत्त हो जाएँगे। ऐसे निकलेंगे कि फिर कभी फसेंगे ही नहीं। जीवन में सुख-दुःख के द्वन्द्व आते हैं। जैसे प्रेय आया, तो सुख मिला और उसके विपरीत स्थिति बनी तो दुःख मिला, उस द्वन्द्व से हम विमुक्त हो जाएँगे। तब ईश्वर-कृपा से मूढ़तारहित होकर अव्यय पद को पा लेंगे। मछुआरा जब पानी में जाल फेंकता है, तब जो मछली मछुआरे के पाँवों के इर्द-गिर्द घूमती रहती है, वह उस जाल में नहीं फँसती है। इसी तरह ईश्वर जो मायाजाल फैलाते हैं, उसमें फँसने से हम बच जाएँगे, यदि हम उनके श्रीचरणों के पास चले जाएँ तो।

अधिकारी साधक के गुण

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख-दुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययं तत् ।।५।।

निर्मानमोहाः जितसंगदोषाः (जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है और जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है) अध्यात्मनित्याः विनिवृत्तकामाः (जो परमात्मा में नित्य स्थित हैं, जिनकी कामनाएँ नष्ट हो गई हैं) सुखदुःखसंज्ञैः द्वन्द्वैः विमुक्ताः अमूढाः (सुख-दुख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन) तत् अव्ययम् पदम् गच्छन्ति (उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं)।

''जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है और जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जीत लिया है, जो परमात्मा में नित्य स्थित हैं, जिनकी कामनाएँ नष्ट हो गई हैं, सुख-दुख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं।''

पाँचवें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण विशेषण बता रहे हैं, जो साधक के जीवन में उतर आते हैं। वे बताते हैं कि किन गुणों से युक्त विशिष्ट पुरुष उस अव्यय पद को पाने का अधिकारी बनता है। ऐसा एक विशिष्ट पुरुष जिसमें मान और मोह का अभाव है। हमारा आत्मस्वरूप अनन्त और असीम है। जब परिच्छिन्न तत्त्व को 'मैं' कहता हूँ, तो वह मान कहलाता है और जब उस परिच्छिन्न तत्त्व को 'मेरा' कहा जाता है, तो वह मोह कहलाता है। वस्तुतः हमारा स्वरूप आत्मा है, जो अनन्त, अतीत है। परन्तु देह और मन की उपाधियों से हम आत्मा को सीमित-सा कर देते हैं और इस सीमित-सी आत्मा को 'मैं' मानना ही मान का कारण होता है और उसी सीमित-सी आत्मा को 'मेरा' कहकर हम विभिन्न पदार्थों का संयोग कर देते हैं, वही मोह का कारण होता है।

जो सीमित देह और मन की उपाधि से अपने-आपको अलग रखने की क्षमता रखता है, उसमें मोह और मान का अभाव रहेगा । संग से कई प्रकार के दोष उपजते हैं। संगदोष से मनुष्य कुप्रवृत्तियों की ओर चला जाता है। संसार में रहते हुए संग अनिवार्य हो जाता है। उस संग के दोष से जो अपने-आपको मुक्त कर ले, उसे कहा गया – जितसंगदोष। जैसे हम चाहे जितना भी बचने का प्रयत्न करें, पर कभी-कभी कुछ भद्दे गीतों की कड़ियाँ हमारे कानों में घुस ही जाती हैं और बार-बार हमारी स्मृति में आती रहती हैं। इसका अर्थ हुआ कि संसार में व्याप्त विषयों के संग को कोई काट तो सकता नहीं। संग आएगा, उसके दोष भी हमें लगेंगे, पर जो उन दोषों को जीत लेता है, वह व्यक्ति परमपद को पाने का अधिकारी बन जाता है। जीतने की प्रक्रिया पिछले अध्यायों में भी भगवान ने हमें बताई और अभी-भी धीरे-धीरे प्रकारान्तर से वे उपाय हमारे समक्ष रखते जाएँगे।

अध्यात्मनित्या – नित्य-अध्यात्म में जिसकी स्थिति है।

नित्य शब्द महत्वपूर्ण है। हमारे भीतर कभी-कभी प्रेरणा आती है, जिसके वशवर्ती होकर हम साधना करना चाहते हैं, पर कुछ दिनों बाद वही प्रेरणा म्लान हो जाती है और हमारी साधना की गाड़ी वहीं पर रुक जाती है। ऐसी अनित्य साधना से मनुष्य कभी परमपद को नहीं पा सकता। उस पद को पाने के लिए गाड़ी का सतत चलते रहना आवश्यक है। अध्यात्म में जो नित्य रमा हुआ है, उसी की गाड़ी सतत चलेगी और उस गाड़ी का संघर्षण नहीं होगा। कामनाएँ संघर्षण के समान हैं। वे गाड़ी के पहियों को जाम कर देती हैं। कामनाएँ बाधक-तत्त्व हैं। इन कामनाओं से निवृत्त होना पड़ता है। इन्हें विशेषरूप से दूर करना पड़ता है। साधना का यह क्रम चलता रहता है और एक स्थिति ऐसी भी आती है, जब हम कामनाओं के कलुष को पूरी तरह हटाने में समर्थ होते हैं। विनिवृत्तकामा: – वे कामनाएँ फिर लौटकर वापस नहीं आतीं। द्वन्द्वैर्विमुक्ता: सुख-दु:खसंज्ञै: – मनुष्य हमेशा सुख के पीछे भागता है और दु:ख से अत्यन्त क्षुब्ध अनुभव करता है। सुख और दु:ख के द्वन्द्व से ऊपर उठने में जो व्यक्ति समर्थ होता है, उसे कहते हैं – अमूढ़ विवेकी। वही उस अव्यय पद को प्राप्त करता है। वह अव्यय पद क्या है? उसको छठवें श्लोक में बताते हैं। **(क्रमश:)**

पृष्ठ २२७ का शेष भाग

बार पुन: वेदान्त दर्शन को विश्व में पुनर्जीवित किया। उन्होंने इसे एक विचारशील दर्शन बनाया। उपनिषदों में विचार प्राय: बहुत अस्पष्ट प्रतीत होते हैं। शंकराचार्य ने बौद्धिक पक्ष पर ध्यान दिया। उन्होंने अद्वैत की अद्‌भुत सुसंगत प्रणाली को विकसित किया तथा उसे चिन्तनशील बनाकर और लोगों के सामने रखा। शंकराचार्य में हमने प्रचंड बौद्धिक शक्ति देखी, जो हर एक चीज पर विचार का प्रज्वलित प्रकाश डालती है। हम जो चाहते हैं, वह है अस्तित्व, ज्ञान और अनन्त आनन्द का सामंजस्य। क्योंकि यही आज हमारा लक्ष्य है। यह मिलन हमें सर्वोच्च दर्शन प्रदान करेगा। हम सामंजस्य चाहते हैं, केवल एकांगी विकास नहीं। मुझे आशा है कि हम सभी उस उत्कृष्ट संयोग को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करेंगे। इसीलिये स्वामी विवेकानन्द अपने शिष्य स्वामी शुद्धानन्द जी को लिखते हैं, 'हमें शंकर का ही अनुसरण करना चाहिए – 'शंकर एव हि अवलम्बनीय:।' ○○○

कविता

शंकराचार्य विवेकानन्द

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

दो रूपों में दिखते हैं शंकराचार्य विवेकानन्द ।
किन्तु स्वरूप एक है दोनों का सच्चिदानन्द ।।
शंकर जी ने बद्ध जीव का ब्रह्मस्वरूप बताया ।
देव विवेकानन्द ने भारत-भाग्योदय समझाया ।।
नर-नारायण अभिन्न पर दिखते रूप अनेक ।
जिसने जान लिया, वह जाने जीव ब्रह्म है एक ।।
नाश अविद्या का होता जब ब्रह्मज्ञान हो जाता है ।
सेवा से भगवान हृदय में स्वयं प्रकट हो जाता है ।।
अज्ञानता बन्धन का कारण कहते शंकराचार्य ।
मानव-सेवा मुक्तिप्रदायक कहते विवेक-आचार्य ।।
भारत के चहुँ दिसि में शोभित शंकर मठ-स्थापन ।
विवेकानन्द ने किया स्थापित रामकृष्ण मिशन ।।
धर्म-ज्ञान की अलख जगाते दोनों परमाचार्य ।
नमन करूँ उभय विभूति का विवेकानन्द शंकराचार्य ।।

आये थे तुम हरि भजन को

बाबूलाल परमार

आये थे तुम हरि भजन को, ओटन लगे कपास रे ।
दुर्लभ मानव जीवन पा कर, बैठे रहे उदास रे ।।
खाने-पीने और कमाने में, लगे रहे दिन-रात रे ।
कभी न बैठे सत-संगत में, न सुनी एक भी बात रे ।।
कभी न थोड़ा ध्यान लगाया, ईश्वर की अभिलाष में ।
गाफ़िल बने रहे तुम हरदम, नश्वर भोग-विलास में ।।
गुरु शरण में हो कर बदलो, जीवन को उल्लास में ।
'बाबूलाल' सत्संग में उनके, हरि-दर्शन है पास में ।।

साधुओं के पावन प्रसंग (८८)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

''स्वामी निखिलानन्द – श्रीरामकृष्ण देव ने संन्यास दीक्षा देने के समय कोई औपचारिक अनुष्ठान किया था क्या? स्वामी अभेदानन्द जी महाराज ने कहा था कि श्रीमाँ से उनको मन्त्र-दीक्षा प्राप्त हुई थी। हालाँकि ठाकुर ने उनकी जीभ पर एक मन्त्र लिख दिया था।

''स्वामी सारदानन्द – ठाकुर के लिए क्या कोई विशेष अनुष्ठान की आवश्यकता थी? तुमने शाम्भवी दीक्षा के विषय में सुना ही होगा। मैं उसके बारे में नहीं जानता था। जब मैं श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग लिख रहा था, तब किसी तन्त्र के पुस्तक में उसके विषय में जाना। (शाम्भवी दीक्षा के समय गुरु एक अत्यन्त उच्च अवस्था में होते हैं और शिष्य को केवल देखकर, छूकर या गुरु को प्रणाम करने के समय ही शिष्य को अविलम्ब ज्ञान प्रदान कर सकते हैं।)

'यह कहना कठिन है कि किस व्यक्ति को कब आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो जाये। हजारों वर्ष से अँधेरा कमरा प्रकाश से एक क्षण में जगमगा उठता है। मृत्यु के उपरान्त उसका जन्म होगा कि नहीं या किस व्यक्ति का कौन-सा अन्तिम जन्म है, इन बातों की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।'

'श्रीमाँ और श्रीठाकुर अभेद हैं। ठाकुर कहा करते थे, ''मेरी धर्मपत्नी मेरी शक्ति है।'' ठाकुर ने स्वयं ही उन मन्त्रों को श्रीमाँ को दिया था। अन्यथा नहीं तो क्या श्रीमाँ अपने आप आगे आकर दीक्षा देना आरम्भ करतीं? ठाकुर वृन्दावन में श्रीमाँ के सामने प्रकट हुए और स्वामी योगानन्द को मन्त्र-दीक्षा देने के लिए कहा। पहले श्रीमाँ सहमत नहीं हुई कि लोग क्या सोचेंगे? ठाकुर के दो-तीन बार दर्शन देने पर श्रीमाँ दीक्षा देने के लिए सहमत हुईं। कोठार में राम बाबू (बलराम बोस के पुत्र) के अनुरोध पर श्रीमाँ ने एक देशी ईसाई को दीक्षा दी।

'दक्षिणेश्वर में श्रीमाँ हमलोगों के सामने एक बड़ा घूंघट डाल कर रखती थीं। यहाँ तक कि कोई उनका चरण भी देख नहीं सकता था! नहबत के उस छोटे कमरे में क्या कोई व्यक्ति रह सकता था। इसके साथ-ही-साथ वह चारों ओर से बन्द था तथा उसके ऊपर बर्तन रस्सी से झूलते रहते थे। श्रीमाँ नहबत के ऊपर कभी भी नहीं जाती थीं। श्रीमाँ के सिर में बहुत केश थे तथा वे भींगे ही रहते थे। योगीन-माँ उनसे छत पर जाकर सूर्य की धूप में बैठने के लिए कहतीं। हालाँकि वे छत पर न जाकर सीढ़ी पर बैठकर ही केश सुखाती थीं।

'श्रीमाँ ठाकुर की आज्ञा से ही चलती थीं। ठाकुर के महासमाधि के पश्चात् श्रीमाँ के हाथ में कंगन तथा लाल किनारी वाली साड़ी पहनते देखकर लोग मजाक करते थे। इसलिए वे कंगन निकालने वाली थीं। किन्तु ठाकुर ने वृन्दावन, कामारपुकुर तथा जयरामवाटी में दर्शन देकर कंगन निकालने से मना किया था। गौरी-माँ ने सुनकर कहा था, ''माँ, तुम्हारे पति तो चिन्मय हैं।''

''स्वामी तुरीयानन्द – ठाकुर ने श्रीमद्भागवत से एक कथा सुनायी थी। एक व्यक्ति की धर्मपत्नी अपने पति की जीवित अवस्था में अच्छे वस्त्र-आभूषण इत्यादि नहीं पहनती थी। जिस दिन उसके पति की मृत्यु हुई, उस दिन से उसने अपने को अच्छे साड़ी, आभूषण इत्यादि से शृंगार करना

आरम्भ कर दिया। किसी के पूछने पर वह कहती, ''आज से मेरा पति चिन्मय है।''

''स्वामी निखिलानन्द – 'स्वामी अरूपानन्द (रासबिहारी महाराज) ने कहा था कि ठाकुर ने श्रीमाँ को यह वचन दिया था कि जिन लोगों को वे दीक्षा देंगी, उनके अन्तिम समय में वे आयेंगे और हाथ पकड़कर ले जायेंगे।'

''स्वामी सारदानन्द – 'मैंने यह नहीं सुना है, लेकिन ऐसा सम्भव हो सकता है। क्या ठाकुर और श्रीमाँ अलग हैं? ठाकुर ने कहा है कि इन भक्तों की मृत्यु के समय उनको आना ही होगा।'

''मिसेज वीलर को उन्नीस वर्ष की आयु में श्रीरामकृष्ण का दर्शन हुआ था। मिस वाल्डो के साथ वे न्यूयार्क में व्याख्यान सुनने आयी थीं। वे मोंटेक्लेयर, न्यू जर्सी में रहती थीं और उनके आवास में कक्षाएँ हुआ करती थीं। हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) उनको बहुत स्नेह करते थे तथा वे कक्षा में सामने बैठती थीं। एक बार अस्वस्थ होने के कारण उनकी श्रवण करने की शक्ति कुछ चली गयी थी। मिसेज वीलर ने स्वामी विवेकानन्द का दर्शन नहीं किया था। एक बार उनको टायफायड हुआ। उस समय उन्होंने देखा कि श्रीरामकृष्ण उनके बिस्तर के पास बैठे हुए हैं तथा सम्पूर्ण कमरा ज्योति से पूर्ण है।

''एक अन्य महिला, जिन्होंने स्वामी विवेकानन्द का दर्शन किया था, उनको भी बहुत पूर्व में ही श्रीरामकृष्ण का दर्शन हुआ था।

''श्रीरामकृष्ण ने काशीपुर उद्यानवाटी में रहते समय कहा था, ''मैं एक ऐसे देश में गया था, जहाँ के लोगों के शरीर का रंग गोरा था, आँखें नीली और केश सुनहरा था। उनलोगों में अत्यधिक भक्ति है।

''स्वामी सारदानन्द, 'क्या कृपा अपने गुण के आधार पर पायी जाती है? यदि कृपा गुण को देखकर होती है, तो उसे कृपा नहीं कहा जा सकता। काशीपुर में ठाकुर ने एक बच्चे का दर्शन किया था। बच्चे का दोनों हाथ सोने के सिक्के से भरा हुआ है। जो सोने का सिक्का चाहता है, बच्चा उसे नहीं देता और जो नहीं चाहता है, वह उसे दे देता है। फिर भी उनके द्वार पर पड़े रहना पड़ता है। तुलसीदासजी के एक दोहे में है, 'गुरु के द्वार पर विश्वासी कुत्ते के जैसा पड़े रहो।'

''स्वामी विवेकानन्द नर ऋषि के अवतार थे। बदरिकाश्रम में नर और नारायण ऋषि ने लोक-कल्याण के लिए तपस्या की थी। अवतार को समझने के लिए इन नर अवतार को समझना होगा। जैसे कृष्ण और अर्जुन, गौर (चैतन्य महाप्रभु) और निताई (नित्यानन्द)। अवतार सर्वदा दिव्य भाव में अवस्थान करते रहते हैं, किन्तु नर ऋषि साधारण मनुष्य की तरह रहते है।

'नित्यसिद्ध और ईश्वरकोटि अलग-अलग होते हैं। ईश्वरकोटि एक लक्ष्य लेकर आते हैं।

२८ मार्च, १९२५, बुधवार, एकादशी, वाराणसी

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज कहते थे, 'सर्वदा गुरु या अपने इष्ट के प्रसन्न मुख का ध्यान करना चाहिए। शुष्क या रुखा ध्यान अच्छा नहीं है। कोई अच्छा ध्यान कर रहा है कि नहीं यह उसके चेहरे को देखकर समझा जा सकता है। उसके चेहरे पर कभी भी अप्रसन्नता दिखाई नहीं दे सकती। अपने इष्ट के चरणकमल से मुख कमल की ओर ध्यान करना चाहिए न कि मुख कमल से चरण कमल की ओर।

बृहस्पतिवार, काशीधाम

''शरीर को अच्छा रखना होगा। क्योंकि श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि मनुष्य शरीर रत्नों से भरा हुआ सन्दूक जैसा है। ध्यान तथा सेवाकार्य हेतु शरीर को स्वस्थ रखना होगा, जिससे शरीर अस्वस्थ न हो।

''स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे, 'यह शरीर कुछ नहीं है, किन्तु इसी शरीर से ईश्वर को प्राप्त करना होगा।'

''मन-मुख एक करके ईश्वर के प्रति समर्पित होने की आवश्यकता है। हमलोग मुख से कहते हैं, 'ठाकुर मैंने आपको अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया।' लेकिन अपने हृदय में हम विचार करके देखें कि क्या वास्तव में मैंने ठाकुर को सबकुछ समर्पित कर दिया है?'' **(क्रमशः)**

मानव-मनोविज्ञान और सुख-प्रेम विवेचन

रामकुमार गौड़, वाराणसी

रागात्मिका वृत्ति सभी जीवों में है, किन्तु मनुष्य में सर्वाधिक है। सुख और प्रेम सभी जीवों का एकान्तिक लक्ष्य है। सुख को मोटे तौर पर हम इन्द्रियासक्तिपरक और इन्द्रियातीत नामक दो तरह से समझ सकते हैं। इन्द्रियासक्तिपरक सुख मन की दशा को अवनत और निम्नगामी बनाकर क्रमश: प्रगाढ़ता पाना चाहता है। मन अनन्त का अंश होने के कारण कोई सीमा नहीं मानता, कहीं रुकना नहीं चाहता। उन्नत और अवनत सभी दशाओं में वह आगे ही बढ़ने को उत्कट रहता है। वह अनन्त ज्ञान, शक्ति और जिज्ञासा आदि रखने के कारण कोई सीमा नहीं स्वीकारना चाहता। इसलिए उक्त दोनों सुखों के ही क्षेत्रों में रुचि-भेद के अनुसार, व्यक्ति उसी क्षेत्र या अवस्था का चरम सुख पाने की इच्छा रखते हुए उत्कर्ष-अपकर्ष को प्राप्त करता है। मन की कहीं भी सन्तुष्ट रहकर सीमित न रहने की भी एक सहज प्रकृति है। इसलिए जो लोग मध्यममार्गी होकर दोनों का कुछ भोग (सुख-दुख) प्राप्त करते हैं, वे सामान्य, भौतिक और पारमार्थिक; दोनों सुखों को कुछ-कुछ मात्रा में प्राप्त करते हैं। किन्तु इन सुखों की अतिशयता में जानेवाले लोगों में इन्द्रियासक्तिपरक सुखवाले लोग रोग-शोक-अशान्ति का भोग करके चारित्रिक दुर्गुण रूप अपकर्ष को प्राप्त होकर पतन के गर्त में चले जाते हैं। भोग-सुख की प्रबलता, विलासप्रियता, स्वार्थ-कलह-आलस्य आदि के कारण कितने ही परिवार और साम्राज्य, संस्थाएँ अयोग्य उत्तराधिकारियों की नियति को प्राप्त होकर पतन के गर्त में चले गए।

धर्मराज युधिष्ठिर तथा पाण्डव भ्रातागण धर्मशील होकर उस युग में क्षत्रियोचित वीरता के साथ अविवेकपूर्ण द्यूतक्रीड़ा (जुए का खेल) की कुप्रथा से विरत न हो पाने के कारण ही संकटों से गुजरते हुए अनेक कड़वे अनुभव भोगते हुए संकटग्रस्त रहे और श्रीकृष्ण के अमोघ संरक्षण तथा राजनीतिक और रणनीतिक चातुरी से ही सुरक्षित रहे और पराभव से बच पाए। दूसरी ओर श्रीराम धर्मशील और विवेकशील बने रहकर आदर्श राजा के रूप में प्रतिष्ठित रहकर मानवता के आदर्श सिद्ध हुए।

इन्द्रियातीत प्रेम में भी असंतोष के कारण प्रगाढ़ता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति के कारण धर्मशीलता तथा पारमार्थिक दैवी-सम्पद के अर्जन में दया-दान-धर्म की प्रबलता से त्याग का चरमोत्कर्ष प्राप्त करके व्यक्ति सर्वत्यागी और समाज-सेवा-सुख से अपना और समाज का उत्कर्ष प्राप्त करना चाहता है। चूँकि कहीं रुकने और सन्तुष्ट नहीं होने की प्रवृत्ति मन की रहती ही है, इसलिए मनुष्य इन्द्रियातीत प्रेम में सर्वत्यागी और ईश्वर प्रेमोन्मत्तता तक की अवस्था प्राप्त कर लेता है। जो लोग मन को थोड़े में सन्तुष्ट रखकर दोनों अवस्थाओं में रहना चाहते हैं या सीख लेते हैं, वे थोड़ा-थोड़ा दोनों का अनुभव पाते हैं, किन्तु इन्द्रियातीत सुख की प्रबलता से प्राप्त गुणों और दिव्य आनन्दजन्य कृतार्थता और प्रगाढ़ता से वंचित ही रहते हैं।

हमारे शास्त्राकार निर्लोभी, नि:स्वार्थपरायण तथा मानवता के उत्कर्ष के मंगलकामी थे, इसलिए उन्होंने नियम-विधि, मोद-विधि (पुरस्कार-विधि) तथा दण्ड विधि के द्वारा सभी को श्रेय पथ पर अग्रसर करने का प्रयास किया है। धर्मशील आचरण से वैराग्य प्राप्त होता है तथा योग-साधना से ज्ञान

तथा मोक्ष प्राप्त होता है। गोस्वामीजी रामचरितमानस में कहते हैं –

धर्म तें बिरति जोग ते ग्याना ।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ।
जातें बेगि द्रवऊँ मैं भाई ।
सो मम भगति भगत सुखदाई ।। (३/१,२)
बिनु गुर होइ कि ग्यान, ग्यान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद-पुरान, सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु ।।
७/८९क

गुरु और वैराग्य प्राप्त होने पर ज्ञान होता है और ज्ञान से मोक्ष मिलता है। धर्मशील आचरण से वैराग्य मिलता है, फिर मोक्ष मिलता है। इसीलिए कहा गया है – 'युवैव धर्मशील: स्यात्' अर्थात् युवाकाल से ही धर्मशील होना चाहिए, क्योंकि पता नहीं, शरीर वृद्धावस्था देखेगा कि नहीं, यह भी निश्चित नहीं है। भक्ति से धर्मशीलता और वैराग्य की ओर अग्रसर होकर दिव्य सुख का पथिक बनकर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है, किन्तु सच्चा भक्त 'सोऽहम्' भाव का आनन्द न चाहकर ईश्वरीय प्रेम का आस्वादन प्राप्त करने के लिये सेवक-सेव्य के द्वैतभाव में ही रहना चाहता है। चूँकि भक्ति में साधना की कठोरता, तपस्या आदि पर अधिक बल न देकर भाव-प्रेम की प्रगाढ़ता तथा मध्यम पथ की प्रधानता होती है, इसीलिए इसे सुगम पथ कहा गया है –

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी।
बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी ।। ७/४४/५

शंकराचार्यजी ने मानव-मनोविज्ञान के अवस्थागत सोपान को इंगित करके ही 'बालस्तावत् क्रीडासक्त:' इत्यादि को रेखांकित किया है।

आत्मा, ईश्वर, प्रेम, भक्ति आदि अनिर्वचनीय और मूलत: अनुभवगम्य हैं। फिर भी, मानव-मन इनके विवेचन का लोभ-संवरण नहीं कर सका है।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई।
तदपि कहें बिनु रहा न कोई।।१/१२/१
हरि अनंत हरि कथा अनन्ता ।
कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता।।१/१३९/५

प्रेम के अनुभव के मूलत: तीन घटक हैं अर्थात् इन्हीं तीनों की परिस्थितियाँ या शर्तें ही भौतिक और पारमार्थिक दोनों ही प्रेम को उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। पहला – रूपाकर्षण, दूसरा – गुण-श्रवण तथा तीसरा – साहचर्य। हमें जिससे भी प्रेम होगा, इन्हीं तीनों के माध्यम से होगा। भौतिक रूप या भावगत रूपछवि का आकर्षण, उसका गुण सुनने से और इन दोनों के न होने पर भी, केवल साथ-साथ रहने या साहचर्य के नियम से हमें प्रेम का अनुभव या आकर्षण होता रहता है। महाकवि सूरदासजी ने अपने इष्ट श्रीकृष्ण के लीलागान के बहाने प्रेम के इन तीनों रूपों का एक ही पद में एकत्र समावेश करके भक्ति-प्रेम की जो रसमाधुरी सृजित की है, वह अतुल्य और स्तुत्य है। इसका भावार्थ इस प्रकार है –

श्रीकृष्ण चंदन चर्चित अंगों से यमुना तट पर गए तथा वहाँ मस्तक पर रोली से अलंकृत श्रीराधा से भेंट होने पर वे उनका परिचय पूछते हुए कहते हैं – कहाँ रहती हो, किसकी पुत्री हो, कभी ब्रज-क्षेत्र में दिखी ही नहीं। श्रीराधाजी कहती हैं कि हम व्रज में क्यों आते, हम अपने ही पुर (बरसाना) में खेलती हैं। किन्तु वहाँ अपने कानों से नन्द के लाल द्वारा दही-माखन चोरी का गुण श्रवण करते थे। इस पर श्रीकृष्ण ने मधुर परिहास करके कहा कि देखो, मैं इस चोरी के गुण के कारण क्या तुम्हें भी चुरा लूँगा अर्थात् ऐसा नहीं करूँगा। इसलिए हमारे साथ मिलकर खेलने चलो। सूरदास के प्रभु श्रीकृष्ण रसिकों के शिरोमणि हैं। उन्होंने भोली-भाली युवती श्रीराधा को बातों में ही भुला दिया। अर्थात् विमुग्ध कर दिया –

बूझत श्याम कौन तू गोरी ।
गए श्याम रवितनया के तट, अंग दिए चंदन की खौरी ।
निकसत ही तहँ मिली राधिका, भाल विशाल तिलक दिए रोरी ।
कहाँ रहति काकी है बेटी, देखी नहिं कबहूँ ब्रज-खोरी ।
काहे को हम ब्रज तक आवत, खेलत रहत आपनी पौरी।
सुनत रहत श्रवननि नन्द ढोटा, करत रहत माखन दधि चोरी।
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहे, खेलन चलो संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक शिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी।।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सुख और प्रेम से मनुष्य कभी सन्तुष्ट और तृप्त नहीं हो सकता और इसे पाए बिना वह रह भी नहीं सकता।

श्रीरामकृष्ण देव के शब्दों में कहें, तो –

जैसे चीटी चीनी का पर्वत ले जाना चाहे ।
वैसे मानव-मन ईश्वर को ठीक समझना चाहे। ○○○

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में महाशिवरात्रि मनायी गयी

१५ फरवरी, २०२६ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में महाशिवरात्रि के उपलक्ष्य में श्रीरामकृष्ण मन्दिर में ६ बजे सन्ध्या आरती के बाद शिवनाम संकीर्तन हुआ। तदनन्तर शिवजी की विधिपूर्वक पूजा की गयी। शिवजी को जल, दूध, दही, मधु आदि से महास्नान कराया गया। पूजा के पश्चात् सभी सन्तों और भक्तों ने शिवजी को स्नान कराया। शिवजी के भजन-कीर्तन हुये। अन्त में सभी भक्तों को फल-मिठाई प्रसाद वितरित किया गया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में श्रीरामकृष्ण देव की जयन्ती मनाई गयी

१९ फरवरी, २०२६ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में श्रीरामकृष्ण देव की १९१वाँ जन्म-जयन्ती समारोह मनाया गया। प्रात: ५ बजे मंगल आरती से प्रारम्भ हुआ। ७ से १० बजे तक श्रीरामकृष्ण देव की विशेष पूजा स्वामी पद्माक्षानन्द जी महाराज के द्वारा की गयी। १०.१५ बजे हवन हुआ। तदनन्तर भोग और भोग-आरती की गयी। तत्पश्चात् सभी संन्यासियों और भक्तों ने ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव के चरणों में पुष्पांजलि समर्पित की। उसके बाद लगभग ५०० भक्तों ने प्रसाद ग्रहण किया। तदनन्तर नारायण-सेवा हुई, जिसमें ८०० लोगों ने प्रसाद ग्रहण किया। सन्ध्या ६ बजे श्रीरामकृष्ण देव की आरती के पश्चात् श्रीरामकृष्ण-नामसंकीर्तन और भजन हुये। उसमें आगत सभी भक्तों को प्रसाद दिया गया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में श्रीरामकृष्ण देव की जयन्ती के उपलक्ष्य में कार्यक्रम हुआ

१८ फरवरी, २०२६ को अपराह्न २.३० बजे विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में श्रीरामकृष्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में एक परिसंवाद का आयोजन किया गया, जिसमें रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी योगस्थानन्द जी महाराज, स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी महाराज और विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने श्रीरामकृष्ण के जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला। प्रारम्भ में वहाँ के छात्रावास के बच्चों ने सुन्दर सस्वर वैदिक मन्त्र का पाठ किया और भजन गाये।

रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर में वार्षिकोत्सव

रामकृष्ण मिशन, बिलासपुर में द्विदिवसीय वार्षिकोत्सव मनाया गया। २१ फरवरी, २०२६ को सन्ध्या आरती के बाद एक सभा हुई, जिसमें रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के सचिव स्वामी योगस्थानन्द, विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ के कुलपति स्वामी सर्वोत्तमानन्द, रामकृष्ण मिशन, दिल्ली के सचिव स्वामी सर्वलोकानन्द जी ने व्याख्यान दिये। २२ फरवरी, २०२६ को ९ बजे से आध्यात्मिक शिविर था, स्वामी चेतनात्मानन्द जी और उपरोक्त वक्ताओं ने भक्तों का मार्गदर्शन किया। उसी दिन शाम को सन्ध्या आरती के बाद सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें उपरोक्त सभी वक्ताओं ने व्याख्यान दिये। आश्रम के सचिव स्वामी सेवाव्रतानन्द जी ने सभी समागत अतिथियों का स्वागत किया।